जैन आदर्श ग्रन्थमाला का १ ला ग्रन्थ

सुदर्शन चरित्र

सुदर्शन सेठ का रंग-बिरंगे, १२ चित्रों से सुसज्जित,

सुविस्तृत जीवन-चरित्र।

अनुवादक—

परिडत श्यामसुन्दर अवस्थी,

एच० एल० एम० एस०

प्रकाशक—

महालचन्द बयेद, प्रोप्राइटर—

"ओसवाल प्रेस"

१६, सोनागोगा स्ट्रीट, कलकत्ता।

र निर्वाणाब्द २४५०] [विक्रमाब्द १९८०

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य १॥) रेशमी जिल्द २)


मुद्रक—
महालचन्द बयेद
ओसवाल प्रेस
१६, सीनागोग ष्ट्रीट,
कलकत्ता।



जैन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य्य-व्रत की महिमा का वर्णन जितना अधिक किया गया है और दृष्टान्त स्वरूप, प्रसंगवश, जितने प्रमाण दिये गये हैं कि शायद ही किसी अन्य धर्म के शास्त्रों से इसकी तुलना हो सके। वास्तव में शील-गुण समस्त गुणों का राजा है।

सेठ सुदर्शन का जीवन चरित्र जैनियों का एक परम आदरणीय पाठ्य है। भिन्न २ जैन मुनियों ने सेठ सुदर्शन के चरित्र के आधार पर व्याख्यान तथा पद्य ग्रन्थ कथा रचा है। परन्तु यह ग्रन्थ श्रीमद् भिक्षु स्वामी रचित सुदर्शन सेठ के व्याख्यान के आधार पर लिखा गया है। अनुवादक महोदय ने मूल पुस्तक के भावों की रक्षा करते हुए सरल, सुललित, खड़ी बोली में इसकी रचना की है। सुदर्शन चरित्र के विषय में कुछ लिखने के पहले प्रसंग वश इसके मूल लेखक श्रीमद् भिक्षु स्वामी की ऐतिहासिक संक्षिप्त जीवनी यहां दी जाती है।

मरुस्थल के कंटालिया ग्राम में साह बल्लुजी सुखलेचा नामक ओसवाल सज्जन के औरस में "दीपांदे" माता की कुक्षि में श्रीमान्

भिक्षु का जन्म सं० १७८३ आषाढ़ शुक्ल १३ के दिन हुआ। बाल्यावस्था ही में यह अत्यन्त वैराग्य भाव के धारक थे। सं० १८०८ में स्थानकवासी एक सम्प्रदाय के पुज्य रघुनाथ जी के पास इन्होंने दीक्षा ली। जब यह माता के गर्भ में थे तब इनकी माताजीने सिंह का स्वप्न देखा था। इस लिये पहले माताजी दीक्षा की आज्ञा नहीं देती थीं; परंतु रघुनाथ जी के यह विश्वास दिलाने पर कि "स्वप्न के फल स्वरूप श्रीमद् भिक्षु भविष्यत् में देश-देशांतरों में विचरता हुआ सिंह के समान अप्रतिद्वन्द्वी होगा", माता जी ने आज्ञा दी थी। कुछ दिन गुरु के साथ रह, उनका शिथिलाचार देखकर श्री भिक्षनजी ने अषाढ़ शुक्ल १५ सं० १८१७ को मेवाड़ देशांतर्गत "केलवे" नगर में भगवान् अरिहन्त का स्मरण कर पुनः भाव दीक्षा ग्रहण किया और वीतराग भगवान् के धर्म्म का प्रचार करते हुए सं० १८६० भाद्र शुक्ल १३ के दिन स्वर्ग को पधारे।

आपके अनुयायी "तेरह पंथी" नाम से विख्यात हैं। जब स्थानक वासी से अलग हुए थे तब आपके अनुयायी बहुत थोड़े थे; परन्तु सत्य धर्म्म का उपदेश देने, अपूर्व्व वैराग्य के धारक होने और केवली प्ररूपित धर्म्म को सूत्रों के निर्देशानुसार पालन करने के कारण इनके अनुयायी श्रावकों की संख्या लाखों में हो गयी है और दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है। श्रीमान् भिक्षु स्वामी ने इस सेठ सुदर्शन के चरित्र को कथा के अनुसार, मारवाड़ी भाषा में, सं० १८५० मिती कार्त्तिक सुदी ५ को नाथ दुवारे

(मेवाड़) में रचा था। आप के बनाये बहुत से व्याख्यान, कथा और पद्यबन्ध जोड़ आदि हैं। काव्य के हिसाब से यदि देखा जाय तो वास्तव में वह अपूर्व हैं। जिन सज्जनों ने आपके बनाये मारवाड़ी भाषा के मूलग्रंथों को पढ़ा होगा, वही उनका प्रकृत रसास्वादन कर सके होंगे।

खेद है कि मारवाड़ी बोली में लिखे हुए जैन आचार्य्यों की रचनाओं पर हिन्दी भाषा भाषियों की दृष्टि अभी तक नहीं पड़ी है। Comparative Study (तुलनामूलक पठन) के लिये हिन्दी विद्वानों को चाहिए कि तेरह पंथी आचार्य्य एवम् साधुओं के बनाये हुए ग्रंथो को देखें। खास कर श्रीमद् भिक्षु स्वामी एवम् श्रीमज्जयाचार्य्य कृत ग्रंथ तो भाव सम्पत् में, शब्द गुम्फन चातुर्य्य में, एवं काव्य के हिसाब से प्रत्येक हिन्दी तथा अन्य भाषा के विद्वानों के देखने और विशेष भाव से पठन करने योग्य हैं।

सुदर्शन सेठ के चरित्र में प्रसंगवश अनुवादक ने बड़ी सावधानी से जैन धर्म्म के मूल तत्वों का दिग्दर्शन कराया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, एवम् परिग्रहराहित्य का भी उचित स्थान में संक्षिप्त उल्लेख किया है; किन्तु ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव व गुण वर्णन करने में तो लेखक ने वास्तविक में ग्रंथको रोचक बनाया है। आशा है कि हिंदी भाषा के विद्वान इस ग्रंथ का समुचित आदर कर लेखक महाशय का उत्साह बढ़ावेंगे, ताकि वे भविष्यत् में तेरह पंथी-आचार्य्यों के ग्रंथों का अनुवाद कर अन्य कोई पुस्तक भी उपहार दे सकें। लेखक तथा प्रकाशक का

उद्देश्य तो तभी सफल होगा, जब मूल ग्रंथों पर विद्वानों की दृष्टि आकर्षित होगी।

जैन धर्म के कठिन नियमों के कारण साधुगण कोई पुस्तक छपवा नहीं सकते। हस्त लिखित ग्रंथ को कंठस्थ करके कोई २ गृहस्थ छपवाते हैं, परन्तु बहुत से ऐसे अमूल्य ग्रन्थ-रत्न साधुओं के पास हैं कि जिनका यदि हिंदी भाषा में प्रचार हो तो भव्य जीवों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है।

निवेदक—
छोगमल चोपड़ा।

अनुवादक का निवेदन।

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदन ताप ताड़नैः
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा" ॥

जैसे सोने की परीक्षा उसे कसौटी पर घिसकर, काट कर, हथौड़ी से कूट कर और आग में तपाकर की जाती है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा लोगों की सम्मति, आचरण, कुल और कर्म से की जाती है; ठीक इसी तरह सेठ सुदर्शन-स्वर्ण की भी परीक्षा की गयी। पहले वे कपिला की कसौटी में कसे गये, फिर अभया ने अभय होकर अपनी काम-कतरनी से जांचा, इसके बाद उन्होने (तीन दिन अनशन रह कर) वेश्या-हथौड़ी के हाव-भाव की चोटें खायीं और अन्त में भूतनी (व्यन्तरी) के भभकते हुए उपद्रव-अग्नि कुण्ड में तपाये गये; किन्तु खरे सोने की भांति उनकी प्रभा बढ़ती ही गयी। वे अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित न हुए। संसार में ऐसे व्यक्ति कम होते हैं जो हजार दुःखों के दांत दिखाने पर भी तलवार की धार के समान कठिन कर्त्तव्य मार्ग को पार कर जाते हैं, और जे पार कर जाते हैं वही महात्मा और महापुरुष के नाम से पुकारे जाते हैं। उन्हीं महापुरुषों में सेठ सुदर्शन का नाम आज भी जैन जगत में जगमगा रहा है

सुदर्शन का त्याग भी उनके चरित्र की महत्ता का एक प्रधान हेतु है सुदर्शन परम जितेन्द्रिय थे। निर्मल चरित्र के प्रभाव से ही मनुष्य संसार में पूजित होता है और सच्चरित्रताही एक दिन सर्वज्ञता के सिंहासन पर बिठाती है। अतः उन्ही त्याग मूर्ति के पवित्र चरित्र का दिग्दर्शन कराने की अभिलाषा से यह पुस्तक लिखी गयी है।

इधर कुछ दिनो से भिन्न २ धर्मावलम्बियों के धर्म-ग्रथों को पढ़ कर, उनके सिद्धान्तों को जानने की मेरी इच्छा रहा करती है। सौभाग्यवश मुझे कुछ जैन धर्म की पुस्तकों के देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस प्राचीन धर्म के धर्म-ग्रन्थावलोकन से प्रतीत हुआ कि यदि इन के भाव हिन्दी भाषा भाषियों के सामने उपस्थित किये जांय तो कम से कम नैतिक दृष्टि से हमारे नवयुवकों के बढ़ते हुए वर्त्तमान कामोद्दीपन के शान्त करने में ऐसी पुस्तकें बहुत कुछ काम करेंगी। इसी उद्देश को सामने रख, मैं आज यह तुच्छ भेंट लेकर मातृ-भाषा के मन्दिर में प्रवेश कर रहा हूं। यह कैसी है, इसका विचार पाठकों और पाठिकाओं पर ही छोड़ता हूं। यदि जैन जाति और विशेष कर नवयुवक शिक्षित समाज इसको पढ़ कर कुछ भी लाभ उठावेगा, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा और हो सका तो कोई दूसरी भेंट भी लेकर उपस्थित होऊंगा।

यह अनुवाद मैने मूल पुस्तक के आधार पर किया है, यथासाध्य भावों में कहीं हेर-फेर नहीं होने पाया। इसके

लिए मैं बाबू रायचन्द जी सुराना का कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मुझे भाव-भाषा की उलझने सुलझाने में बड़ीसहायता दी है। भूमिका के लेखक बाबू छोगमल जी चोपड़ा, बी० ए० बी० एल० ने नोट लिखने में बड़ी मदद दी है अतः उनका कृतज्ञ हूं। चरित्र-मुद्रिका की शोभा बढ़ाने की इच्छा से, उपयुक्त स्थानों में, कई एक मासिकपत्रों तथा पुस्तकों से संग्रहीत, पद्यों का नगीना जड़ा गया है, अतः उनके रचयितों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। साथही बाबू महालचन्द जी बयेद का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने मुझे ऐसी उपयोगी पुस्तक के लिखने का परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया।

प्रूफ संशोधन में कई एक अशुद्धियां रह गयी हैं पाठक उनके लिए क्षमा करेंगे।

तौरा—उन्नाव (युक्तप्रान्त)
शिवरात्रि—फाल्गुन, सं० १९८०

विनीत—
श्याम सुन्दर अवस्थी

प्रकाशक का निवेदन ।

एक समय था जब कि लोग ऐय्यारी, तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को बड़े चावसे पढ़ा करते थे, परन्तु कुछ लेखकों और प्रकाशकोंने, सदुद्देश्य से प्रेरित हो, जबसे धार्मिक, पौराणिक उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्रादि लिखने और प्रकाशित करने शुरू किये तबसे लोक रुचि ने भी पलटा खाया। गंदे, कुरुचि-पूर्ण, भ्रष्ट उपन्यासों की जगह धीरे धीरे इनका प्रचार हो चला। वास्तवमें लोकरुचिको पलटने की साहित्यमें बड़ी भारी शक्ति है।

किसी भी समाज के लोगों के मनोभावों का पता उनके तत्कालीन साहित्य से भली भांति लग सकता है क्योंकि जो जैसे साहित्य क्षेत्रमें विचरण करता है उसके विचार भी वैसे ही हुआ करते हैं। जैसे गंदे साहित्यके पठन पाठन से लोकरुचि विकृत हो जाती है वैसे ही उत्तम, उपदेशपूर्ण धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्यके अध्ययन से सुधर भी जाती है, साथ ही यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि, मानव चरित्र को उन्नत बनाने के जितने साधन हैं उनमें से "आदर्श पुरुषोंके जीवनचरित्रों का 'पठन-पाठन" भी अन्यतम है। कोमल मति बालकों और चञ्चल मति युवाओं के चरित्र-सङ्गठन का इससे अच्छा साधन और हो ही नहीं सकता। यूरोप, अमेरिका में भी—जो इस समय आधुनिक विद्याओंके केन्द्र हैं—आदर्श चरित्रों की बड़ी कदर की जाती है। वहां के विद्वानों ने हमारे यहां के कथा-साहित्यका गहरा अध्ययन किया है और उसमें से अच्छे २ उपाख्यानों का वहां की भाषाओं में अनुवाद कर जनताके सामने रक्खा है।

हमारा प्राचीन पौराणिक साहित्य विशेषतः जैन धर्म्मका कथा-साहित्य इतना गम्भीर एवं विस्तृत है और उसमें ऐसे २

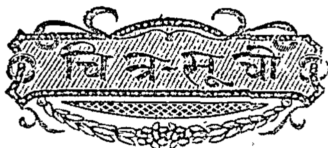
रत्न भरे पड़े हैं जिनका मुकाबला करने में अबतक किसी भी देश का साहित्य समर्थ नहीं हुआ। इन्हीं रत्नोंमें से "सुदर्शन चरित्र" भी एक है ; जिसका हिन्दी अनुवाद कराकर प्रकाशित करने की मेरी बहुत दिनों से उत्कट इच्छा थी, क्योंकि ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व को प्रदर्शित करने में यह ग्रन्थ अद्वितीय है और आवश्यकता भी इस समय ऐसे ही ग्रन्थों की है, जो ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व को भली-भांति दरशा कर नवयुवकों के चरित्र-सुधार में सहायक हों। अतएव जैन श्वेताम्बर तेरहपंथ नायक आद्याचार्य श्रीभिक्षुगणि रचित "सेठ सुदर्शन को व्याख्यान" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने के लिये मैंने पण्डित श्यामसुन्दरजी अवस्थी से अनुरोध किया, बड़े ही हर्ष की बात है कि आपने उसे सहर्ष स्वीकार कर, शीघ्र पूरा कर दिया, एतदर्थ आपको धन्यवाद।

पुस्तकके अनुवादके सम्बन्धमें मैं और तो कुछ कह नहीं सकता क्योंकि मैं कोई भाषाका विद्वान, लेखक या समालोचक नहीं ; परंतु इतना कह सकता हूं कि मेरे देखनेमें इसे सर्वगुण-सम्पन्न बनानेमें पण्डितजी ने कुछ कसर उठा नहीं रक्खी, फिर भी यह पुस्तक बहुत जल्दी में लिखी गयी है इससे विविध दोषों का रह जाना स्वाभाविक ही है। आशा है विद्वजन क्षमा करेंगे।

हां, पुस्तक की छपाई सफाई और स्थानानुकूल चित्रोंके लगाने में मैंने भरसक परिश्रम और मुक्तहस्त से द्रव्य-व्यय किया है। यदि पाठकगण इसे अपनावेंगे और पढ़कर चारित्रिक लाभ उठावेंगे तो मैं अपने को सफलकाम समझूंगा और शीघ्र ही कोई दूसरी भेंट लेकर सेवामें उपस्थित होऊंगा।

निवेदक—

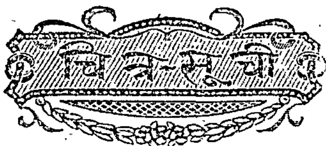
महालचन्द बयेद।


चित्र-सूची

विषय-सूची

(पहला अध्याय)

(दूसरा अध्याय)


चित्र-सूची

(छठवां अध्याय)

(सातवां अध्याय)

(तीसरा अध्याय)

(चौथा अध्याय)

(पांचवा अध्याय)

(छठवां अध्याय)

(सातवां अध्याय)

सुदर्शन-चरित्र



सुदर्शन सेठ।



सुदर्शन सेठ।

पहला अध्याय

जन्म और बाल्यकाल ।

देश और काल ।

प्राचीन कालमें, किसी समय भरतक्षेत्र के अङ्गदेश में, इन्द्रपुरी के सरीखा चम्पा नामक एक नगर था। वहाँ पर उच्च जाति का, निर्मल कुलवाला, राजशिरोमणि, धात्रीवाहन नाम का राजा राज्य करता था। अप्सराओं को मात करनेवाली, सौन्दर्य्य में सुराङ्गनाओं से बढ़ कर, अभया नाम की उसकी पटरानी थी। इस नगर के निवासी धर्म-कर्म में बड़े प्रवीण तथा जिन-धर्म के तत्त्वों के अच्छे ज्ञाता थे, शुद्धसाधु ओं का आवागमन अधिक होने के

कारण वहाँ श्रावक-श्राविकाओं की संख्या और दया-धर्म की जानकारी विशेष थी। उसी नगर में ऋषभदास सेठ महा ऐश्व-र्य्यवान, चतुर-सुजान, अपनी जिनमती भार्य्या के साथ, श्राव-कोचित कार्य्यों को करता हुआ, सपरिवार सुख से दिन व्यतीत करता था। श्रावक के बारह व्रतों* को पालनेवाली, सुशीला, रूप

---

*पहला व्रत—स्थूल प्राणातिपात—विनाश से निवृत होना। इसमें निरपराध त्रस जीवों को साक्रोश इरादे की विधि कर के हिंसा करने कराने का मन, वचन, काया से त्याग करने का विधान है।

दूसरा व्रत—स्थूल झूठ बोलने से निवृत होना। इसमें क्रोध या लालच वश सुशील कन्या को दुःशील और दुःशील को सुशील कहना, अच्छे गौ आदिक पशु को बुरा और बुरे को अच्छा बतलाना, जमीनादि के लिये झूठ बोलना, किसी की रक्खी हुई धरोहर (थापन) को दबा लेना (हजम कर जाना) या झूठी गवाही देना इत्यादि प्रकार के झूठ का त्याग।

तीसरा व्रत—स्थूल चोरी से निवृत होना। इसमें दीवाल में सेंध लगा कर, गांठ खोल कर, ताले को अन्य कुन्जी से खोल कर, मालिक की आज्ञा के बिना लेनेवाला चोर कहलाता है ऐसे पदार्थों को उनके मालिक की आज्ञा के बिना लेने का त्याग।

चौथा व्रत—स्थूल मैथुन का त्याग। अर्थात् अपनी स्त्री में सन्तोष रखने का या दूसरे की ब्याही हुई अथवा रक्खी हुई ऐसी परस्त्रियों को त्यागने का विधान है।

पांचवां व्रत—परिग्रह का परिमाण। परिग्रह का सर्वथा त्याग करना गृहस्थ के लिये असंभव है। इसलिये गृहस्थ संग्रह की इच्छा का परिमाण कर लेता है कि, अमुक चीज इतने परिमाण में ही रक्खूंगा, इस से अधिक नहीं, यह पांचवां अणुव्रत है।

गुणों की खानि, जिनमती ने एक दिन रात्रि के समय पर्यङ्क पर सोते हुए, स्वप्न में, सुदर्शन पर्वत देखा। उसने स्वप्न का संवाद अपने पतिसे कहा। उन्होंने प्रातःकाल होते ही स्वप्न-पाठक (ज्योतिषी पण्डित) को बुला कर स्वप्न का शुभाशुभ फल पूछा। विचारक ने कहा कि, तुम्हारे एक शुभलक्षणवाला, कीर्त्तिवान, वंश शिरोमणि,

---

छठा व्रत—दिशाओं की मर्य्यादा। अपनी लोभ-वृत्ति को मर्यादित करने के लिये ऊर्ध्व-दिशा में अर्थात् पर्वत आदि पर, अधोदिशा अर्थात् खानि आदि में और तीरछी अर्थात् पूर्व, पश्चिम, आदि चार दिशाओं में जाने का परिमाण नियत कर लेना।

सातवां व्रत—भोजन और कर्म दो तरह से होता है। भोजन में जो मद्य, मांसादि बिलकुल त्यागने योग्य है उनका त्याग करके बाकी में से अन्न, जल आदि एक ही बार भोग में आने वाली वस्तुओं का तथा वस्त्र आदि बार बार भोग में आनेवाली वस्तुओं का परिमाण कर लेना, इसी तरह कर्म में, अङ्गार कर्म्म आदि अति दोषवाले कर्मों का त्याग करके बाकी के कर्मों का परिमाण कर लेना यह उपभोग परिभोग परिमाण रूप सातवां व्रत है।

आठवां व्रत—अनर्थ दण्ड से निवृत होने का है। अनर्थ दण्ड चार प्रकार से होता है:—(१) अपध्यानाचरण, यानी बुरे विचार के करने से, (२) प्रमादाचरण, यानी आलस्य के कारण से, (३) प्राण हिंसा से, (४) पाप कर्मोपदेश, यानी पापजनक कर्मों के उपदेश से।

अपनी और अपने कुटुम्बियों की जरूरत के सिवा उपरोक्त चार प्रकार के अनर्थ दण्ड से निवृत होना, अनर्थ दण्ड विरमण रूप आठवां अनर्थ दण्ड व्रत है।

नवमा व्रत—सावद्य प्रवृति तथा दुर्ध्यान का त्याग करके राग-द्वेष वाले प्रसंगों में भी समभाव रखना, यह सामायिक रूप नवमां व्रत है।

सुपुत्र पैदा होगा। यह सुन सेठानी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और नाना प्रकार के दान-सम्मान देकर, बड़ी अभिलाषा के साथ पुत्रोत्पत्ति की बाट जोहने लगीं। सवा नौ महीने पूरे होते ही, बहु सुलक्षण युक्त, विशाल वक्षस्थल, दीर्घ बाहु और बड़े २ नेत्र वाला बालक पैदा हुआ। सेठ ने बड़ी धूम-धाम के साथ पुत्र जन्मोत्सव मनाया और सुदर्शन पर्व्वत का स्वप्न होने के कारण बालक का नाम सुदर्शन रखा। सुदर्शन का बाल्यकाल बड़े ही लाड़ प्यार के साथ व्यतीत हुआ। जब वे आठ वर्ष के हुए विद्याध्ययनारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण, अल्प कालमें ही उन्होंने अनेक प्रकार की विद्यायें और कलायें सीखीं, उनका स्मृति ज्ञान बड़ा ही तीव्र था।

दसवां व्रत—छठे व्रत में जो दिशाओं का परिमाण और सातवें व्रत में जो उपभोग परिभोग का परिमाण किया हो, उसका प्रति दिन संक्षेप करना, वह देशावकाशिक रूप दसमां व्रत है।

ग्यारवां व्रत—अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथियों में आहार तथा शरीर की शुश्रूषा का और सावद्य व्यापार का त्याग करके ब्रह्मचर्य पूर्वक धर्म क्रिया करना यह पौषधोपवास नामक ग्यारहवां व्रत है।

बारहवां व्रत—निर्ग्रन्थ साधुओं को प्रासुक (अचित निर्दोष) चतुर्विध आहार ४ वस्त्र ५ पात्र ६ कम्बल ७ पादपुंछन ८ पडिहारु अर्थात् कार्य्य हो जाने पश्चात् फिरती दे देनेवाली चीज ९ पाट बाजोटादि, शय्या के लिये १० जगह जमीन, रहने के लिये ११ तृणादिक, संथारे के लिये १२ दवाई १३ चूर्णादि १४ इत्यादिक चौदह प्रकार का दान देना।

थोड़े दिन पश्चात् कपिल पुरोहित से उनकी मित्रता हुई। दोनों में खूब बनती थी, एक दूसरे के बड़े हितचिन्तक थे। जब सुदर्शन विवाह के योग्य हुए तब ऋषभदास ने सागरदत्त की सुपुत्री मनोरमा के साथ, अच्छे लग्न और शुभ मुहूर्त्त में, बड़े बाजे-गाजे के साथ, रीति-अनुसार धन खरचते हुए, विवाह कार्य्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् नियमानुकूल कुटुम्ब-परिवार वालों को भोजन कराया और सर्व-सज्जनों को भली-भांति सन्तुष्ट किया। इधर सुदर्शन की पत्नी मनोरमा बड़ी पतिव्रता, श्रावक के बारह व्रतों और शील पालन में प्रवीण तथा सुपात्र दान देने में अत्यन्त कुशल थी। उधर उनके मित्र कपिल पुरोहित की कपिला नामक स्त्री बड़ी दुश्चरित्रा, कुशीला और कुलक्षणा थी।

सुदर्शन को सेठ की पदवी।

एक समय सेठ ऋषभदास ने संसार की अनित्यता पर विचार करते हुए सपत्नीक संयम लेने को मन में ठानी और अपने सुयोग्य पुत्र सुदर्शन को गृह कार्य्य सौंप, आत्म कल्याण के हेतु आपने दीक्षा ग्रहण की। सुदर्शन अपनी गृहकार्य कुशलता, सौजन्यता और दान शीलता के कारण तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गया। ऋद्धि सम्पन्न, ऐश्वर्य्यवान और सुयोग्य पुरुष देख कर नगर के राजा ने उन्हें "सेठ" की पदवी प्रदान की। सुदर्शन सेठ आनन्द पूर्व्वक गृहस्थ धर्म की मर्य्यादा के अन्तर्गत अपनी धर्मपरायण भार्या के साथ संसारिक सुख भोगने लगे। कुछ दिन पश्चात् सेठ

को पुत्र-मुखावलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ और उन्होंने उसका नाम सुकन्त रखा। सुदर्शन सेठ अपने धर्म-कर्म में बड़े कट्टर थे; वे नियमानुसार श्रावक के बारह व्रतों का पालन करते और महीने में चार पोसह* कर, रातको निर्भय हो, श्मशान भूमि में जाकर सोते थे। लंगोटे के तो आप इतने सच्चे थे कि सुराङ्गनाओं के भी डिगाये नहीं डिग सकते थे; देश देशान्तरों में यह बात प्रख्यात् हो गयी थी कि आप शील पालन में अद्वितीय पुरुष हैं।

दाम्पत्य प्रेम।

बड़े सौभाग्य की बात तो यह थी कि जिस प्रकार आपकी मनोवृत्तियां सत्मार्ग की ओर प्रवृत्त थीं, उसी प्रकार आपकी भार्य्या का भी श्रावकोचित क्रिया पर विशेष प्रेम था। यह दोनों ही बड़े प्रेमानन्द से, बारह व्रतोंको पालते हुए, परस्पर की प्रगाढ़ प्रीति में जकड़े हुए थे। पूर्व सुकृत के बिना ऐसा सुसंयोग होना बड़ा ही दुर्लभ है—"दुर्लभा सदृशी भार्य्या"। जगत में विद्या, सम्पत्ति, शरीरको सुख और पुरुष को सुलक्ष्णा स्त्री तथा स्त्री को सुयोग्य पति बिना पूर्व सञ्चित सुकर्म के मिलना दुस्तर है।...

*श्रावक का ग्यारहवां व्रत पौषध (पोसह) कहलाता है। सो इसलिये कि, इससे धर्म की पुष्टि होती है। यह व्रत अष्टमी चतुर्दशी आदि तिथियों में चार प्रहर या आठ प्रहर तक किया जाता है। इसके आहार, शरीर-सत्कार, ब्रह्मचर्य और अव्यापार ए चार भेद है।

कर्मों का भोग।

देखो संसार में कोई विद्वान है तो कोई निरक्षरभट्टाचार्य्य, कोई वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होता है तो कोई चिथड़ों के लिये तरसता है, कोई मालपुआ और खीर उड़ाता है तो कोई टुकड़े मांग कर भी पेट नहीं भर सकता; एक के घर सम्पत्ति का आगार है तो एक कौड़ी २ के लिये भटकता फिरता है। यहां पर "जैसी करनी तैसी पार उतरनी" की कहावत पूर्णतयः चरितार्थ होती है। देखिये तो भला, किसी मनुष्य को देख कर लोग स्वागत करते, बोलने के लिये इच्छुक रहते और किसी को देख कर मुंह बिजकाते, नाक-भौं सिकोड़ते तथा घृणा प्रकट करते हैं। कोई बड़ी २ अट्टालिकाओं में, सेज बिछा कर, शयन करता है तो कोई हाट-बाट में जा, ज्यों त्यों कर रात काटता है। कोई हाथी और पालकी पर चलता है तो कोई सिर पर बोझ लेकर गांव २ फिरता है। किसी के सामने लोग हाथ जोड़े "जी हुजूर" किया करते हैं और किसी पर दृष्टि भी नहीं डालते। कोई सुन्दर स्वस्थ शरीर वाला है तो कोई तन क्षीण हो रोग का घर बना है। एक दूसरे को देख कर जलता है तो एक सद्‌ज्ञान द्वारा दूसरे का निस्तार करता है। एक रूपवान जो देखने में सभी को अच्छा लगता है, तो एक काला-कलूटा जो किसी को नहीं सुहाता। एक बाल-विधवा है जिसका सारा समय दुःख में ही व्यतीत होता है तो एक सधवा सोलह शृङ्गार कर अत्यन्त सुख भोगती है। एक संयम मार्ग द्वारा अपना काम बना रहा है तो एक भोग-विलास में पड़ा

हुआ "अपने हाथ अपने पैर कुल्हाड़ी मारना" है। अब सोचिये यदि एक मनुष्य, व्यभिचारी होकर, मदिरा-मांस का भक्षण करता है और उसके हृदय में दया का लेश-मात्र भी नहीं है तो वह कैसे सुख पा सकता है; किन्तु एक वह जो शुद्ध साधुओं की सेवा कर, शील व्रत का पालन करता है निश्चय ही आनन्द का भागी है। नीतिकारों ने कहा है कि:—

"पूर्व जन्म कृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनां।

नीति शास्त्र निपुणा वदंति यद् दृश्यते तद धुनाव सत्यपत्"॥

अर्थात्—पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल प्राणी को अवश्य ही भोगना पड़ता है; ऐसा जो नीतिकारों का उपदेश है वह यथार्थ है। चाहे सदैव फलने वाला वृक्ष निष्फल हो जाय, स्त्री निष्फल हो जाय, पर कर्त्तव्य निष्फल नहीं जाता। उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार ही सेठ सुदर्शन ने पूर्व संचित साधुसेवा के योग से मनोरमा जैसी सती-सुलक्षणा स्त्री प्राप्त की है। जिस प्रकार हिलमिल कर वे दोनो अपने धर्म-कर्म का प्रतिपादन करते थे इस प्रकार कार्य्य करने वाला संसार में विरला ही मिलेगा।



दूसरा अध्याय

कपिला का कपट और सेठ की चाल।

सेठ पर मोहित होना।

एक दिन सुदर्शन सेठ किसी गृहकार्य वश उधर गये थे, वापस लौटते समय अपने मित्र कपिल के घर विश्राम करने के लिये ठहरे। कपिल की कपिला नामक स्त्री बड़ी ही रूपवती सुकोमल और सुन्दरतामें किसी रानी-महारानीसे कुछ कम न थी, किन्तु स्वभावकी ऐसी खोटी और दुश्चरित्रा थी कि परपुरुष से प्रेम करनेमें जरा भी नहीं हिचकती थी। यौवन प्राप्त, रूपवान सुदर्शन सेठको देख कर उसके "मुंहमें पानी भर आया" और मन ही

मन सोचने लगी कि "वह स्त्री बड़ीही सौभाग्यवती है जिसका यह पति है—वह धन्य है जो इसके साथ सुख भोगती है। यदि मुझे कोई ऐसा मौका मिलता तो इस सेठ के संग भोग-विलास कर रतिके आनन्दको प्राप्त करती"। इसी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई, चिन्तित हो, दुःखके साथ दिन काटने लगी। न रातको नींद आती थी, न दिनको चैन पड़ती थी। गृहके सभी कार्य्य उसको अरुचिकर थे, वह विषय-वासना में इस प्रकार उन्मत्त हो गयी कि उसे लोक लज्जा तथा आगे पीछे का कुछ भी ध्यान न रहा। अवगुणों की खानि, दुष्टा मायाविनी को, स्वयम् उसका प्राण-पति ही शत्रु सम दृष्टिगोचर होने लगा। उसकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि यदि यह कहीं चला जाय तो मुझे अपने प्राण-वल्लभ (सेठ) से मिलने का सुअवसर प्राप्त हो, यद्यपि जिन-भगवान की महिमा के जान कार, सच्चे श्रावक सुदर्शन सेठ वीर्य्य रक्षा की उग्र तपस्या में सिद्धहस्त थे, उनके सामने कामातुर कपिला की दाल गलनी कठिन थी; तथापि वह निशि-वासर इसी चेष्टा में लगी रहती थी कि चाहे जो कुछ हो जाय, एकवार सेठ के संग रमण कर; अपना जीवन अवश्य सफल करूंगी।

संयोग वश एक दिन कपिला का पति गृह कार्य्य वश किसी गांव को गया था। यह सूना मौका पाकर कपिला ने त्रिया-चरित्र का जाल बिछाया और सरल हृदय, सेठ सुदर्शन-हंस को बुरी तरह से फंसाया। कुशीला स्त्रियों के चरित्र तो इतने पेचीदे होते हैं कि उनसे बचना बड़ा ही कठिन है। इनकी लीलाओं का

धारा-पार नहीं। यदि सात समुद्र के जलकी स्याही, तीन लोक का कागज और समस्त वनस्पत्तियों की लेखनी बनायी जांय तो भी स्त्री-चरित्र लेखबद्ध नहीं हो सकता। स्वयम् जिनेश्वर भगवान ने, "तन्दुवियालिया" ग्रन्थ में, सती-कुसतीकी चर्चा करते हुए बतलाया है कि "जिस प्रकार सती शील गुणकी खानि है उसी प्रकार कुशीला औगुण की जड़ है"। पाठक गण! अब यहां कपिला की धूर्त्तता देखिये कि किस प्रकार माया-जाल बिछा कर सेठ को छकाती है।

सेठ को धोखा देकर लाना।

कपिला ने अपनी चेरी को बुला कर कहा कि "दासी तू सेठ सुदर्शन के निवास स्थान पर जा और बड़ी नम्रता के साथ उनसे कहना कि आपके मित्र कपिल का स्वास्थ्य एका-एक अत्यन्त खराब हो गया है, अतः आप शीघ्र मेरे साथ चलिए"। देख! मेरा यह कार्य्य यदि तू भली भांति सम्पादित करेगी तो सर्वदा के लिए मेरे हृदय में तेरा स्थान हो जायगा और तेरा रुतबा और भी बढ़ जायगा। इतना सुन दासी अविलम्ब सेठके घर पहुंची और वहां जाकर विनय पूर्वक, हाथ जोड़कर, सेठ सुदर्शन से बोली कि "महाराज! आप जल्दी मेरे साथ चलिए, आप के मित्र ने आप को अति शीघ्र बुलाया है" सेठने कहा "क्यों! आज इतनी जल्दी बुलाने का क्या कारण है, कौनसा ऐसा कार्य्य आ उपस्थित हुआ है"! बांदी ने विनम्र हो उत्तर दिया कि "आपके मित्र शारीरिक

कष्ट से इस प्रकार व्यथित हैं कि उन्हें दिन-रात चैन नहीं पड़ती, दुःख के मारे उनका चेहरा उतर गया है; मुख कान्ति क्षीण तथा मन मलीन हो रहा है"। मित्र के कष्ट की बात सुन कर हृदय का वहल उठना एक साधारण बात थी। सुदर्शन सेठ इस बात को भली-भांति जानते थे कि:—

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः॥

अर्थात्—पवित्रता यानी निष्कपटता, उदारता, शूरता, सुख-दुःख में समानता, अनुकूलता, प्रीति और सत्यता ये मित्रों के गुण हैं। अतः सुदर्शन सेठ मित्रानुराग से विह्वल हो गये, उनके रोमांच हो आया और वे अपने समस्त कार्य्य ज्यों के त्यों छोड़, दासी के साथ उठ कर चल दिये। सुदर्शन बात की बात में मित्र के घर पहुंचे और वहां जाकर दासी से पूंछा कि हमारे मित्र कपिल कहां पर हैं। दासी बोली "वे अपने शयनागार में हैं; कृपया आप यहीं खड़े रहिए, मैं आपके शुभागमन का सम्वाद जाकर सुना आऊं और फिर आकर आपको लिवा ले जाऊं"।

इतना कह दासी तो महल पर चढ़ गयी और सेठ नीचे चौक में खड़े रहे। दासी ने जाकर कपिला को सेठ के आने की बात सुनायी। कपिला बड़ी प्रसन्न हुई; उसके हर्ष का पारा-पार न रहा—"मानहु रंकु परी निधि पायो"। अपने प्रेमास्पद से मिलने

के लिये, तेल-फुलेल लगा, सोलहो शृङ्गार कर, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हुई। कपिला ने दासी को आज्ञा दी कि "तू जाकर सेठ को शीघ्र मेरे शयनागार में ले आ और जब वे कमरे के भीतर आजावें, चारों ओर से किवांड़ बन्द कर लेना; किन्तु सावधान! यह भेद सेठ पर खुलने न पाये—यह बात वह न जान सकें"। उधर दासी तो सेठ को बुलाने के लिये नीचे गयी, इधर कपिला एक मनोहारिणी, सुन्दर शय्या पर, शिख से नख तक, चद्दर तान कर लेट गयी; उसका कोई भी अंग बाहर से न दिखायी देता था। मित्रानुराग की प्रेम-रज्जु में जकड़े हुए सुदर्शन अथवा यों कहिये कि परिसा कर्म्मोदय के भँवर में पड़कर, मित्र मिलन की लालसा से, सेठ कपिला के महल में आ विराजे।

पर्य्यङ्क के समीप पड़ी हुई सुन्दर चौकी पर सेठ बैठ गये। दासी ने पूर्व्व शिक्षा के अनुसार उस कपट-किले-कमरे के कपाट बन्द कर लिये। सेठ मित्र को शय्या पर सोया हुआ जान बड़े मधुर स्वरों से बोले "प्रियवर! आप को क्या कष्ट है, किस अङ्ग में कौन सी व्यथा है और किस व्याधि से आप पीड़ित हैं"! इतना सुन कर कपटागार कपिला प्रथम तो मौन हो रही। [जब कोई मनुष्य किसी असत् कार्य्य करने के लिये उद्यत होता है तो किसी न किसी प्रकार से एक बार अवश्य ही उसका आत्म ज्ञान वैसा करने से रोकता है किन्तु इच्छा और ज्ञान में जिसकी प्रबलता होती है, वही विजयी होता है। इसी भांति उस समय लज्जा-ज्ञान ने मानों ऐसे निन्दनीय कार्य्य से

रोकने के लिये उसका मुंह बन्द कर दिया; किन्तु यह विषय-वासना में मग्न हो रही थी, वहां मनोज के आगे बेचारी लज्जा की कुछ भी न चली। स्त्री से पुरुष सदैव बलवान होता है, अस्तु ! लज्जा के साथ मनोज की विजय अनिवार्य्य थी।] कपिला ने सोचा कि लज्जा में पड़ कर ऐसे सुअवसर को हाथसे खोना बड़ी मूर्खता है, सेठ सब प्रकार अपने वश में है। बस ! फिर क्या था, निर्म्मल आकाश-चद्दर को हटा कर मानो पूणमासी का चन्द्रमा उदय हो गया। सुदर्शन सेठ को सामने बैठे हुए देखकर उस चन्द्राननी के मुंह पर हंसी खेलने लगी; उत्साह-आनन्द के कारण कपोलों पर पुलकावली छा गयी। विषय-भोग की प्रार्थना के पश्चात् कपिला ने गलबहियां डाल कर सेठ को छाती से लगा लिया और बड़े हाव-भाव तथा प्रेम पूर्व्वक कामोद्दीपन की क्रियायें करने लगी। तदुपरान्त मायाविनी, छल पूर्ण, मधुर वाणी से नम्रता पूर्व्वक इस प्रकार बोली "प्राण प्यारे ! बहुत दिनों से तुम्हारे साथ रमण करने की लालसा लगी हुई थी, बहु कालोपरान्त यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। अतएव मेरी मनोभिलाषा को पूर्ण कर मेरा मानव जीवन सफल कीजिये"।

कपिला को देख कर सेठका घबड़ाना।

कपिला की करतूत और अनूप रूप देख कर सुदर्शन सेठ तो चकित हो गये। उनका शरीर कांपने लगा और बदन से पसीना छूटा। उसकी सुहावनी सूरत उनके लिये भयावनी हो गयी

और वे घबड़ा से गये। सेठ ने मन में सोचा कि त्रिया-चरित्र से अनभिज्ञ होनेके कारणही मैं इस आपदा में आ फंसा हूं। खैर! कुछ भी हो विपत्ति के समय मनुष्य को धैर्य्य पूर्वक कार्य्य करना चाहिये "आपति कालपरखिये चारी, धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी" अस्तु! यहां घबड़ाने से काम न बनेगा। यदि मेरी आत्मा मेरे वश में है, मैं इन्द्रिय लोलुप नहीं हूं; मेरे मानसिक विचार शुद्ध हैं, तो अनेकानेक उपाय करने पर भी यह मुझे न डिगा सकेगी। जे सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन में दृढ़ संकल्प हैं, उन्हे जितनी ही परिक्षा उपजैगी उनमें उतनी ही अधिक तपाये सोने की भांति शील पालन के अनुराग की प्रभा बढ़ैगी। कष्ट आने अथवा वैरी के पीछे पड़ने पर जो मनुष्य पैर रोप कर सामने खड़ा हो जाता है, उसका कोई भी अनिष्ट नहीं कर सकता। नारी की जाति बड़े २ विज्ञ जनों को भुला कर मूर्ख बना लेती है। जे लम्पट, दुराचारी और अजितेन्द्रिय पुरुष सुख-साधन की लालसा से स्त्रियों के वशी भूत हो जाते हैं, उन्हें दुःखही दुःख मिलता है सुख कुछ भी नहीं, क्योंकि यह विषय-भोग और अन्यान्य सांसारिक जितने कार्य्य हैं सब स्वप्न तुल्य हैं। अतएव उनके आधीन होना—उनकी परतन्त्रता में रहना—बुद्धिमानों का काम नहीं। संसारिक जितने विषय हैं वे लोगों के विश्वास पात्र होने पर भी विश्वास घातक हैं। यद्यपि कामिनी और कञ्चन लोगों को प्रीति जनक मालूम होते हैं तथापि अन्त में हैं वे सभी दुःख जनक।

कारा पाना कठिन है, अतः कोई चाल चलनी चाहिये। सेठ ने कहा, ऐ! कपिला तू निपट निर्बोध और अत्यन्त अज्ञ देख पड़ती है, क्योंकि इतनी देर बाद भी तू यह न जान सकी कि मैं पुरुषत्व हीन हूं। यदि मुझ में कुछ भी पुरुषत्व—काम जोश—होता तो तुझ जैसी अप्सरा सरीखी रमणी से प्रेम करने में मैं क्यों वञ्चित रहता! तू ने केवल नैन बाणों ही से नहीं, उरोज के कुन्दों से मार कर भी मेरी काम परीक्षा कर ली है, इतने पर भी यदि मेरे क्लीवत्व का ज्ञान न हुआ तो अवश्य ही तू मूर्खा है। क्या तू नहीं जानती कि बड़े २ इन्द्रादिक देव भी स्त्री के दासत्व को स्वीकार कर चुके हैं। जिन में कुछ भी पुरुष भाव होता है, वे तो स्त्री के गुलाम बन जाते हैं, मैं तो उसी रोहिड़े के (टेसू के) फूल के सदृश हूं, जो गन्ध-रहित निष्फल होता है। मैंने तेरी सभी बातें ध्यान पूर्वक सुनी है, किन्तु एक पुरुष भाव के अभाव से निरुत्तर होकर मलिन मन हो रहा हूं। अस्तु! अब मुझे मेरे गृह जाने दे, मैं तेरी आशा की पूर्त्ति करने में असमर्थ हूं।

कपिला का पश्चात्ताप।

कपिला सुदर्शन सेठ की यह बातें सुन कर दुखित हो लम्बी सांसें भरने लगी। उसकी आशा-लता पर तुषार की वृष्टि हो गयी। अब वह हाथ मल २ कर पछताती और सिर धुनती है कि "हाय! मेरी तो दोनों गयी—इच्छा की पूर्त्ति तो न हुई किन्तु लज्जा रहित हो गयी—मेरी निर्लज्जता सेठ पर प्रकट हो गयी, अब

स्त्री-गमन का त्याग।

सेठने सोचा कि यदि हम लक्ष्य-भ्रष्ट न होंगे तो यह हमें तिल-मात्र न डिगा सकेगी; किन्तु "येन केन प्रकारेण" इसके जाल से मुक्त होना हमारा पहला कर्त्तव्य है। अगर इस बार, इस बिपत्ति की कालकोठरी से, निर्विघ्न छुटकारा पा गया तो याव-ज्जीवन स्त्री-गमन का त्याग है।

इस प्रकार मन स्थिर कर कठिन शील-व्रत को सर्वदा के लिये धारण किया। अब कपिला की कौन कहे, सेठ ने मनो-रमा के त्याग का दृढ़ संकल्प कर लिया। अरिहन्त भगवान की साक्षी देकर, मनसा, वाचा, कर्मणा से सेठ ने सदा के लिये कान्ति-वर्द्धक शील-हार धारण किया। जे सत्पुरुष अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म्म की शरण में आकर मैथुन सेवन का त्याग करते हैं, उनका मन कभी चलाय मान होता ही नहीं। पर यह सब कुछ तो ठीक है किन्तु "बाबा कम्बल छोड़ते हैं पर जब कम्बल बाबाको छोड़े" वाली लोकोक्ति के अनुसार सुदर्शन के अनिच्छुक रहने पर भी कपिला उन्हें नहीं छोड़ती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि "जब तक हमारे साथ भोग नहीं भोगोगे, मैं तुम्हे कदापि न छोड़ूंगी; मेरी इच्छा की पूर्ति किये बिना तुम कैसे जा सकते हो"।

सुदर्शन की चाल।

सुदर्शन ने देखा कि इस भ्रष्टाचारिणी दुष्टा से सहज में छुट-

कारा पाना कठिन है; अतः कोई चाल चलनी चाहिये। सेठ ने कहा, ऐ! कपिला तू निपट निर्बोध और अत्यन्त अज्ञ देख पड़ती है, क्योंकि इतनी देर बाद भी तू यह न जान सकी कि मैं पुरुषत्व हीन हूं। यदि मुझ में कुछ भी पुरुषत्व—काम जोश—होता तो तुझ जैसी अप्सरा सरीखी रमणी से प्रेम करने में मैं क्यों वञ्चित रहता! तू ने केवल नैन बाणों ही से नहीं, उरोज के कुन्दों से मार कर भी मेरी काम परीक्षा कर ली है, इतने पर भी यदि मेरे क्लीवत्व का ज्ञान न हुआ तो अवश्य ही तू मूर्खा है। क्या तू नहीं जानती कि बड़े २ इन्द्रादिक देव भी स्त्री के दासत्व को स्वीकार कर चुके हैं। जिन में कुछ भी पुरुष भाव होता है, वे तो स्त्री के गुलाम बन जाते हैं, मैं तो उसी रोहिड़े के (टेसू के) फूल के सदृश हूं, जो गन्ध-रहित निष्फल होता है। मैंने तेरी सभी बातें ध्यान पूर्वक सुनी है, किन्तु एक पुरुष भाव के अभाव से निरुत्तर होकर मलिन मन हो रहा हूं। अस्तु! अब मुझे मेरे गृह जाने दे, मैं तेरी आशा की पूर्त्ति करने में असमर्थ हूं।

कपिला का पश्चात्ताप।

कपिला सुदर्शन सेठ की यह बातें सुन कर दुखित हो लम्बी सांसें भरने लगी। उसकी आशा-लता पर तुषार की वृष्टि हो गयी। अब वह हाथ मल २ कर पछताती और सिर धुनती है कि "हाय! मेरी तो दोनों गयी—इच्छा की पूर्त्ति तो न हुई किन्तु लज्जा रहित हो गयी—मेरी निर्लज्जता सेठ पर प्रकट हो गयी, आज

स्त्री-गमन का त्याग।

सेठने सोचा कि यदि हम लक्ष्य-भ्रष्ट न होंगे तो यह हमें तिल-मात्र न डिगा सकेगी; किन्तु "येन केन प्रकारेण" इसके जाल से मुक्त होना हमारा पहला कर्त्तव्य है। अगर इस बार, इस विपत्ति की कालकोठरी से, निर्विघ्न छुटकारा पा गया तो याव-ज्जीवन स्त्री-गमन का त्याग है।

इस प्रकार मन स्थिर कर कठिन शील-व्रत को सर्वदा के लिये धारण किया। अब कपिला की कौन कहे, सेठ ने मनो-रमा के त्याग का दृढ़ संकल्प कर लिया। अरिहन्त भगवान की साक्षी देकर, मनसा, वाचा, कर्मणा से सेठ ने सदा के लिये कान्ति-वर्द्धक शील-हार धारण किया। जे सत्पुरुष अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म्म की शरण में आकर मैथुन सेवन का त्याग करते हैं, उनका मन कभी चलाय मान होता ही नहीं। पर यह सब कुछ तो ठीक है किन्तु "बाबा कम्बल छोड़ते हैं पर जब कम्बल बाबाको छोड़े" वाली लोकोक्ति के अनुसार सुदर्शन के अनिच्छुक रहने पर भी कपिला उन्हें नहीं छोड़ती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि "जब तक हमारे साथ भोग नहीं भोगोगे, मैं तुम्हे कदापि न छोड़ूंगी; मेरी इच्छा की पूर्ति किये बिना तुम कैसे जा सकते हो"।

सुदर्शन की चाल।

सुदर्शन ने देखा कि इस भ्रष्टाचारिणी कुटा से सहज में छुट-

उत्साह दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता है। सेठ भी इस आपदा से निर्विघ्न निरापद हो गये, अस्तु! शील-व्रत पर उनका प्रगाढ़ प्रेम और भी प्रौढ़ हो गया।

त्रिया-चरित्र और कुशीला वर्णन।

कपिला बड़ी ही दुष्टा है। इसके दुश्चरित्रों, कपट की चालों तथा भीवत्स पूर्ण कौतुहलोंको देख कर इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि कुशीला हर प्रकार के निन्दनीय कार्य्य करने में समर्थ हो सकती है। प्रसङ्ग वश यहां कुछ ऐसी स्त्रियों का उल्लेख किया जाता है जिन्होंने अपने कर्त्तव्यों से यह सिद्ध कर दिया है कि सर्पिणी के दांत में, चींटी के मुंह में, और बिच्छू के केवल पूंछ में ही विष होता है; किन्तु कुशीला स्त्री के सारे शरीर में विष ही विष भरा है। स्त्रियों के अवगुणों की कथा अवर्णीय है, इस बात को श्री जिनेश्वर भगवान ने भी स्वीकार किया है। इनके अवगुणों का वारा-पार नहीं, मगर यहां लोगों की जानकारी के लिये संक्षिप्त में कुछ आख्यायिकायें उल्लेख की जाती हैं। स्त्री कपट की पोटली, झूठ का घर, कलहकारिणी और राग-द्वेष की जड़ है। भाई २ को लड़ा देना, पिता पुत्र को अलग कर देना, प्रेम-विच्छेद कराना—फूट पैदा कराना—तो इसके बांये हाथ का खेल है। कहा है कि:—

अन्य संग जिसका जल्पन है अन्य ओर लोचन संपात।
जिसकी हृदय चिन्तना औरहि ऐसी रमणी दुख उत्पात॥

से वे मुझे लज्जा हीन समझेंगे। हाय! हाय!! मुझ से बड़ी भू
हुई। इस प्रकार पश्चात्ताप करती हुई, कुछ क्रोधित हुई—खिसिय
सी गयी। कपिला ने सेठ को नामर्द समझ, दासी को आ
दी कि किवाड़ खोल कर इसे शीघ्र कमरे से निकाल दे। ज्यों
दासी ने किवाड़ खोले त्योंही सेठ, कारावास से मुक्त हुए कै
की भांति, लम्बी चालसे अपने घर आये। कपिला के चरि
अवलोकन से उनके छक्के छूट गये। "आपनि हारी केहि सं
कहै, पेट मसूसा देकर रहै"। वेचारे, ऐसी लज्जा पूर्ण बात
दूसरे से कह भी न सकते थे, क्योंकिः—

अर्थ नाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥

अर्थात्—बुद्धिमानों को धन की हानि, मनका दुःख, घर के दोष, अपना अपमान और प्रतारणा (दूसरे से ठगा जाना) प्रकाश नहीं करना चाहिये (क्योंकि इससे अपनी ही अप्रतिष्ठा होती है)।

दूसरे के घर जाने का त्याग।

सुदर्शन लम्बी सांसें भर कर मनही मन कहते हैं कि, "आह! बड़ा ही भ्रम हुआ, भविष्य में अब कभी स्त्री मात्र का विश्वास न करूंगा। इस वार तो कैसे ही छुटकारा पा गया; किन्तु आज से अब दूसरे के (अकेली स्त्री वाले) घर जाने का त्याग है। जब मनुष्य किसी कार्य्य में सफल मनोरथ हो जाता है तो उसका

निर्बल कर नरक-निगोद * में डाल दिया है। स्वभाव में तो यह मोरनी से चढ़ बढ़ कर है। मोरनी मीठी बोली बोल कर सर्प को खाती है, तो यह रसीली बोली बोल कर कुशील मनुष्यों का प्राण हर लेती है। जैसे मनुष्य कटीली झाड़ी में उलझ जाता है वैसे ही इन्द्रिय लोलुप पुरुष स्त्री के हाव-भाव में फंस जाता

---

*निगोद—अनन्तकायिक—एक निगोद में अनन्त जीव रहते हैं। निगोद के जीव एकेन्द्रिय होते हैं। जैन शास्त्रानुसार एकेन्द्रियों का पांच भेद है। पृथ्वी, अप्, अग्नि (तेज) वायु, एवं वनस्पति। निगोद इस शेष पर्य्याय वनस्पति में ही होता है। जिस वनस्पति में एक शरीर में एक ही जीव है उसे प्रत्येक वनस्पति कहा जाता है। जिस वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव हैं उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। निगोद का जीव साधारण वनस्पति में है। अष्ट कर्म में नाम कर्म की एक प्रकृति को साधारण नाम कर्म प्रकृति कहते हैं, इसी कर्म प्रकृति के उदय से जीव निगोद शरीर पाता है। नारकी जीवों की अपेक्षा निश्चय न्याय से निगोद जीव को जन्म मरणादिक एवं एक शरीर में अनन्त जीवों का अवस्थानादि रूप अत्यन्त दुःख जनक होता है, परन्तु मत्त या मूर्छित अवस्था में जैसे शरीर में आघातादि जनित पीड़ा की अनुभूति नहीं होती वैसे ही निगोद जीव को विशेष दुःख होते हुए भी अति दुःसह नहीं होता। अनादि कर्म सम्बन्ध से यह सब निगोद में रहते हैं। साधारण शरीर में कितने निगोद जीव हैं इसका अनुमान इतने ही से हो सकता है कि इन जीवों में से जीव निकलते जाते हैं तब भी भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकाल में कभी भी एक शरीर न खाली हुआ, और न होगा।

निगोद के भी दो भेद हैं। सूक्ष्म एवं बादर। सूक्ष्म निगोद तो समस्त लोक में भरे हुए हैं और बादर निगोद स्कन्द मूलादि में ही हैं।

जो होती स्वभाव से वंचक, निर्दय, चंचल दुश्शीला ।
यह रमणी कब हो सकती है मानव गण को सुखशीला ॥
जिसका कथन अन्य ही होता मन का अन्य रूप व्यापार ।
करती अन्य क्रिया जो तन से उस वनिता से दुःख अपार ॥
सेवन करती यह कुशील नित खोती कुल मर्य्यादा मान ।
पिता आदि की कीर्ति-लता का भी नहि रखती कुछभी ध्यान ॥
देव, दैत्य, अहि, व्याल आदि के कार्य्य ज्ञान में भी पंडित ।
रमणी के चरित्र वर्णन में हो जाते सहसा खंडित ॥

नारी मक्कारी में तो इस प्रकार सिद्धहस्त होती है कि चौखट पर चढ़ते कांपती; परन्तु पर्व्वत पर चढ़ जाती है घर में अकेली भय भीत होती है, पर रात को श्मशान में चली जा सकती है। चूहे को देख कर कांपती है, पर सिर के नीचे सर्प रख कर सो सकती है। एक आंख से रोती है, तो एक आंख से हंसती है। कभी जोर से चिल्ला उठती है, तो कभी मौनव्रत धारण करती है। कभी दाता बन जाती है तो कभी सूम के कान काटती है। क्षण २ में ऐसे २ रंग बदलती है जिन्हें सहज में जानना कठिन है। अपने पुरुष को बन्दर की तरह नचाना और अपना भृत्य समझना तो कोई बात ही नहीं, यह धर्म्म-कर्म्म में भी बाधा पहुंचाती है। स्त्री को अबला कहना भ्रम है, क्योंकि इसने बड़े २ सुर-नरों को

निर्बल कर नरक-निगोद * में डाल दिया है। स्वभाव में तो यह मोरनी से चढ़ बढ़ कर है। मोरनी मीठी बोली बोल कर सर्प को खाती है, तो यह रसीली बोली बोल कर कुशील मनुष्यों का प्राण हर लेती है। जैसे मनुष्य कटीली झाड़ी में उलझ जाता है वैसे ही इन्द्रिय लोलुप पुरुष स्त्री के हाव-भाव में फंस जाता

*निगोद—अनन्तकायिक—एक निगोद में अनन्त जीव रहते हैं। निगोद के जीव एकेन्द्रिय होते हैं। जैन शास्त्रानुसार एकेन्द्रियों का पांच भेद है। पृथ्वी, अप्, अग्नि (तेज) वायु, एवं वनस्पति। निगोद इस शेष पर्य्याय वनस्पति में ही होता है। जिस वनस्पति में एक शरीर में एक ही जीव है उसे प्रत्येक वनस्पति कहा जाता है। जिस वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव हैं उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। निगोद का जीव साधारण वनस्पति में है। अष्ट कर्म में नाम कर्म की एक प्रकृति को साधारण नाम कर्म प्रकृति कहते हैं, इसी कर्म प्रकृति के उदय से जीव निगोद शरीर पाता है। नारकी जीवों की अपेक्षा निश्चय न्याय से निगोद जीव को जन्म मरणादिक एवं एक शरीर में अनन्त जीवों का अवस्थानादि रूप अत्यन्त दुःख जनक होता है, परन्तु मत्त या मूर्छित अवस्था में जैसे शरीर में आघातादि जनित पीड़ा की अनुभूति नहीं होती वैसे ही निगोद जीव को विशेष दुःख होते हुए भी अति दुःसह नहीं होता। अनादि कर्म सम्बन्ध से यह सब निगोद में रहते हैं। साधारण शरीर में कितने निगोद जीव हैं इसका अनुमान इतने ही से हो सकता है कि इन जीवों में से जीव निकलते जाते हैं तब भी भूत, भविष्यत्, वर्तमानकाल में कभी भी एक शरीर न खाली हुआ, और न होगा।

निगोद के भी दो भेद हैं। सूक्ष्म एवं बादर। सूक्ष्म निगोद तो समस्त लोक में भरे हुए हैं और बादर निगोद स्कन्द मूलादि में ही हैं।

है। नारीके नैन तीखे वाणों और वचन भाले से भी बढ़ कर हैं; किन्तु जब यह तिरछी दृष्टि से देखती है तो वही नैन तलवार का भी काम करते हैं। अन्यान्य शस्त्रों का मारा हुआ मनुष्य तुरन्त ही प्राण त्याग देता है; किन्तु इन शस्त्रों का घायल, मतवाला हो, ज्ञान शून्य होकर, छटपटा २ कर मरता है।

जोंक जिस स्थान पर लग जाती है वहां का रक्त पी लेती है, पर स्त्री जिस पुरुष से लगती है, उसका खून चूस, प्राण हीन बना देती है। सच बात तो यह है कि इस ठगिनी से—जो हाथ में जादू का काम करने वाली मेंहदी लगा, नागिन से भयङ्कर सिर के वालों को बांध, तंग चोली से कुच-कमर को कस कर, संसार को ठगने के हेतु निकलती है—वही सत्पुरुष रक्षित रह सकता है जिसने सत्गुरु के अमृत मय सदोपदेशों का पान किया हो। नारी नवग्रह से बढ़कर है। अरिष्ट ग्रह होने से कष्ट तथा प्राण नाश की शंका रहती है, परन्तु नारी जिस पर मुग्ध हो जाती है नरक निगोद में पहुंचा देती है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि इस असार संसार की अनित्यता तथा मोहजाल को जानते हुए भी लोग "फूले २ फिरत हैं होत हमारो व्याह" हंसी खुशी के साथ काठ में पैर डालते और नारी रूपी बेड़ी पहन कर भी आनन्द के गीत गाते हैं। देखिये! उज्जैन नगरी का हरचन्द नामक राजा सोमला के ऊपर मोहित हुआ और उसने उस को मार कर नदी में बहा दिया। यशोदा ने अपने पति को विष देकर मार डाला, उसके मृत-शरीर

के संग आप भी चिता में जली और नरक गयी। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की * चूलनी माता ने लम्पटता के कारण अपने पुत्रको

---

*चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्त की माता का नाम चूलनी था। जब ब्रह्मदत्त के पिता का स्वर्गवास हो गया तो इसकी माता चूलनी ने पुराने प्रधान का पद हस्तान्तरित कर के अपने प्रिय सरदार को प्रधान का पद सौंपा और उसके सङ्ग भोग-विलास करने लगी। ब्रह्मदत्त के यहां एक काग और हंसनी पाली हुई थी। एक दिन काग बुरे भाव से हंसनी की ओर लासी-लूसी लगा कर लभराने लगा। यह देख ब्रह्मदत्त बहुत बिगड़ा और कहने लगा कि अरे नीच काग तेरे मुंह को यह हंसिनी? अभागी मुंह को दाना। खबरदार हमारे यहां ऐसा अन्याय न होगा, भविष्य में मैंने फिर कभी यदि तेरी ऐसी धृष्टता देखी तो तू जान से मारा जायगा। यह बात (प्रधान और रानी) जब उन लोगों ने सुनी तो चौंक उठे और सोचने लगे कि हो न हो यह बात हम दोनों ही पर लक्ष्य रख कर कही गयी है यहां पर "चोर की दाढ़ी में तिनका" की कहावत चरितार्थ हुई और प्रधान ने रानी से कहा कि अभी तो यह बालक है तब ऐसी दशा है जब सयाने होंगे तब हम दोनों के सुखोपभोग में अवश्य ही बाधा पहुंचायेंगे, अतः इन्हें किसी प्रकार मार डालना चाहिये। रानी भी इसपर सहमत हो गयी और पुत्र के वध को आज्ञा से लाह का एक मकान तैय्यार कराया, किन्तु यह भेद उतारे हुए (पुराने) प्रधान को मालूम हो गया उसने ब्रह्मदत्त से कहा कि तुम्हारी माता तुम्हें मार डालना चाहती है, इसी उद्देश्य से यह लाह का भवन निर्माण किया गया है। ब्रह्मदत्त ने प्रधान की इस बात का विश्वास न किया और कहने लगा कि मेरी मां मुझे मार डालेगी, यह कभी नहीं हो सकता, माता को पुत्र सब से अधिक प्यारा होता है, माता से पुत्र-वध का कार्य्य कदापि न होगा। प्रधान ने कहा अच्छा, यदि आप मेरी बात का

मार डालना चाहा। कैकेयी के कारण राम-लक्ष्मण बारह वर्ष के लिये वन-वासी हुए और दशरथ ने क्लेश पाया। † पद्मावती ने ही

विश्वास नहीं करते तो, जाने दो, मगर मैं एक सुरङ्ग पृथ्वी के नीचे २ खोदवा रखता हूँ जब तुम विपत्ति में फंसना उसी स्थान को लात मार कर गिरा देना और सुरङ्ग के मार्ग से चले आना, वहां मेरे दो घोड़े सजे हुए रहेंगे हम दोनों ही उन पर चढ़ कर अन्य देश को भाग चलेंगे। कुछ दिन बाद चूलनी ने ब्रह्मदत्त का विवाह किया और पुत्र से कहा कि विवाह के पश्चात् सपत्नीक इस मकान में सोने की परिपाटी है, अतः बेटा तुम भी जाओ। ज्योंही ब्रह्मदत्त लाह के भवन के भीतर गया बाहर से आग लगा दिया। मकान में चारों ओर से आग लगी हुई देख कर ब्रह्मदत्त को प्रधान की बात याद आ गयी और लात के धक्के से सुरङ्ग को खोल उसी मार्ग से भग गया। बहुत दिन तक प्रधान और ब्रह्मदत्त दोनों ही घोड़ों पर भ्रमण करते, नाना प्रकार के कष्ट भोगते, ज्यों त्यों कर दिन काटते रहे। जब चक्रवर्ती का तेज आया—असाता वेदनीय कर्मों का अन्त हुआ—तब दोनों अपने घर को लौटे। ब्रह्मदत्त के आने के पूर्व ही उसकी माता चूलनी ने संसार के भोग विलास को मृग तृष्णावत् समझ अपने दुश्चरित्रों पर पश्चात्ताप कर, दीक्षा ले लिया था। ब्रह्मदत्त के घर चलने की प्रार्थना करने पर उसने कहा कि मैंने तो अब संसार छोड़ दिया है। अतः चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्त अपने घर लौट आया और सुख के साथ राज-पाट का आनन्दोपभोग करने लगा।

† श्रेणिक राजा के देहावसान का समय जब निकट आया तब उसने अपने लघु आत्मज वहलकुमार को एक देव प्रदत्त हार-हाथी प्रदान किया। उसके मरने के थोड़े ही दिन पश्चात् एक दिन पद्मावती— जो वहल कुमार के सहोदर भाई कोणक की आर्द्धाङ्गिनी थी— अपने पति से कहने लगी कि, हे स्वामिन् यह हार-हाथी आपके पास रहना चाहिये, आप

राज्याधिकारी हैं और ऐसी अनुपम वस्तुओं से ही राज की शोभा है, अतः आप वहल कुमार से उन्हे ले लीजिये। कोणक के मांगने पर वहल कुमार ने यह कहकर देने से इन्कार किया कि "यह हार-हाथी पिता जी मुझे दे गये हैं, आप को कैसे दे दूं और यदि आप लेना ही चाहते हैं तो मुझे आधा राज्य बांट दीजिये"। किन्तु कोणक इसपर राजी न हुआ और हार-हाथी लेने की प्रबल इच्छा प्रकट की। वहल कुमार ने जब देखा कि मेरे भाई के विचार अच्छे नहीं हैं, बहुत सम्भव है कि यह मुझ से बल पूर्वक (मार कर) छीन ले, तो वह अपने नाना राजा चेड़क के यहां चला गया यह सम्वाद पाते ही कोणक ने दूत द्वारा राजा चेड़क के पास यह समाचार भेजा कि "यातो आप वहल कुमार को यहां भेज दें अथवा हार-हाथी मुझे दिला दें, क्योंकि इस हार-हाथी से राज की शोभा है"। राजाने इसके उत्तर में यह कहला भेजा कि "हमारी दृष्टि में तुम दोनों भाई एक समान हो—दोनों ही पर हमारा प्रेम बराबर है, किन्तु देखो अन्याय-कार्य्य सदैव अनिष्टकर होता है, न्याय की अवहेलना करना अच्छा नहीं, यदि तुम उससे हार-हाथी चाहते हो तो आधा राज्य बांट देने में क्यों आनाकानी करते हो। बिना राज्याधिकार पाये वह पिता-प्रदत्त हार-हाथी तुम्हे कैसे दे दे?" यह सुनते ही कोणक आग-बबूला हो गया, हृदय में क्रोध की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी और तत्क्षणात् एक दूत के द्वारा यह कहला भेजा कि "अरे दुष्ट चेड़क, घर में फूट पैदा करानेवाला, पारस्परिक द्रोह बढ़ानेवाला, नराधम नीच, यातो वहल कुमार को अपने यहां से निकाल दे नहीं तो मेरे साथ संग्राम कर। कोणक को इस युद्ध-घोषणा को राजा ने यह विचार कर स्वीकार किया कि शरणा-गत की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है। राजा चेड़क ने अपने सहयोगियों से भी इस विषय में परामर्श किया किन्तु सभोंने यही राय दी कि युद्ध के

कराया। * रेवती अपने पति महाशतक श्रावक को, पोसह में

भय से शरणागत की रक्षा न करना एक निन्दनीय कार्य्य है। आप युद्ध कीजिये हम सभी आप का साथ देंगे। फिर क्या था, दोनों ओर से युद्ध की तय्यारियां होने लगीं और कोणक तथा राजा चेड़क का बड़ा घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध में—उभय पक्ष के—१८०००० मनुष्य काम आये।

* प्राचीन काल में राजगृही नामक एक नगरी थी। वहांपर धन सम्पन्न महाशतक नामक (गाथापति) एक साहूकार रहता था। यह चौबीस हिरण्य क्रोड़ का धनी और ८० हजार गौओं का स्वामी था। इसके रेवती आदि तेरह प्रमुख स्त्रियां थीं। सुन्दरता में सभी एक से एक बढ़-चढ़ कर थीं। अन्य स्त्रियों के अतिरिक्त रेवती अपने पिता के घर से सात गुनी सम्पत्ति अधिक लायी थी। विवाह के समय रेवती के पिता ने अपने जामाता महाशतक को आठ हिरण्य क्रोड़—आठ करोड़ सोने की मुहरें—और दश हजार गौ का एक वर्ग ऐसे आठ वर्ग गायों के दिये थे। एक समय श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी विचरते हुए राजगृही नगरी में पधारे। नगर नर-नारियों के झुंड के झुंड दर्शनार्थ उनके पास गये और महाशतक श्रावक भी बड़ी उत्सुकता के साथ दर्शनेच्छा से उनके समीप आया। धर्मोपदेश श्रवणोपरान्त महाशतक ने श्रावक धर्म अङ्गीकार करने के साथ ही साथ श्रावक के बारह व्रतों को शिरोधार्य्य किया। व्रतों में यह अभिग्रह लिया कि आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रा पृथ्वी में, आठ करोड़ गृहस्थी के कार्य में और आठ करोड़ व्यापार के लिये तथा आठ वर्ग गायों के रख कर बाकी सभी धन-सम्पत्ति का त्याग है। उसी भांति अपनी तेरह स्त्रियों के उपरान्त मैथुन सेवन का त्याग किया। उसका एक यह भी अभिग्रह था कि द्द्द सेर सुवर्ण से अधिक का व्यापार कभी न करूंगा इस भांति श्रावक के बारह व्रतों को पालता, चौदह प्रकार का दान देता और जीवादि नव-पदार्थों का ज्ञान करता हुआ श्रावकोचित क्रिया के साथ आनन्द से रहने लगा।

(ध्यान मग्न) बैठे हुए, कामोन्मत्त हो—मदिरा-मतङ्ग पर सवार

एक दिन रात्रि के समय रेवती ने विचार किया कि इन बारह सौतों के रहते हुए मुझे अपने स्वामी के साथ विषय-भोग करने का अधिक अवसर नहीं मिलता यदि किसी भांति इन्हें मार डालूं तो अकेले मौज उड़ाऊं। एक समय अवसर पाकर उसने अपनी छः सौतों को अस्त्र द्वारा और छः को विष देकर मार डाला। उन सभों के मरणोपरान्त सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी हुई और महाशतक श्रावक के साथ औदार्य प्रधान मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोग, काम क्रीड़ा, करती हुई आनन्द से दिन व्यतीत करने लगी। रेवती को मांस-मदिरा खाने-पीने का व्यसन पड़ गया था, वह मांस खाने की इस प्रकार आदी हो गयी थी, कि नगरी के राजा श्रेणिक के जीव हिंसा (पंचेन्द्रिय जीव का वध) न करने की मनादी पिटवा देने पर भी, गुप्त रूप से पिता के घर से सेवार्थ आये हुए सेवक द्वारा मदिरा-मांस मंगा कर खाती ही रही। महाशतक श्रावक ने अपने धर्म-कर्म का भलीभांति प्रतिपादन करते हुए सुख से चौदह वर्ष व्यतीत किये। जब पन्द्रहवां वर्ष लगा तो वह गृहस्थी का भार अपने पुत्र को सौंप, पौषधशाला में दर्भ के आसन पर आसीन होकर एकाग्र चित्त से धर्म-ध्यान करने लगे। एक दिन रेवती सुरापान कर मदमस्त हो, सिर के बाल बिखारे, बदन के वस्त्र नीचे गिराती, विकराल रूप धारण किये, पौषधशाला में महाशतक श्रावक के समीप आयी और काम-उत्पादक हाव-भाव दिखाती, प्रेम-रस पगे अटपटे शब्दों से यों कहने लगीः—हे श्रमणोपासक महाशतक! धर्म पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष के इच्छुक यदि आप सच्चा सुख चाहते हैं तो इस शम, दम और तप में इतना व्यर्थ परिश्रम कर काया को कष्ट क्यों देते हैं? परिश्रम ही से सुख चाहते हैं तो मुझ प्रिया की प्रीति सम्पादन में परिश्रम कीजिये। बिना मेरे साथ भोग-विलास किये धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष का लाभ प्राप्त न कर सकोगे। उस कामोन्मत्त बावली की कर्ण-कटु भाषा को सुन कर भी महाशतक श्रावक

होकर—लक्ष्य भ्रष्ट करने केलिये गयी। * देवदत्त सुनार चुप चाप ध्यान में बैठा रहा—किंचित विचलित न हुआ। इस बार तो पति को कुछ बोलते न देख, अपना अपमान समझ लौट गयी किन्तु पुनः पूर्व की भांति जब अपरिवर्तित रूप में फिर आयी तो उसे लक्ष्य भ्रष्ट करने की बड़ी चेष्टा की। इस समय महाशतक श्रावक के शुभ परिणामों की वृद्धि होने के कारण उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हो चुका था। अतः महाशतक श्रावक ने अवधिज्ञान से विचार कर कहा कि "अरी कुलक्षणा, निर्लज्जा, अपशब्द भाषिणी, काली चतुर्दशी को जनी, रेवती तू आज से सातवें दिन में मर कर लुलचुत नरक में जायगी और वहां चौरासी हजार वर्ष नेरिये पने में कष्ट भोगती रहेगी। यह सुन रेवती बड़ी भयभीत हुई और पिछले पांव डरती-कांपती अपने घर चली आयी। महाशतक श्रावक के कथनानुसार वह सात दिन के अन्दर आलस रोग से अनेक कष्ट भोगती हुई मर कर नरक में गयी। पाठक गण! व्यभिचारिणी स्त्री क्या २ कर सकती है अब यह सहज ही अमेनुय है।

* राजगृही नगरी में एक धन सम्पन्न देवदत्त नामक सुनार रहता था। उसके एक एकलौता लाड़िला बेटा था। देवदत्त ने बालक को विवाह योग्य जान एक स्वर्णकार की बालिका से उसका पाणिग्रहण कराया। विवाहोपरान्त वे स्त्री-पुरुष बड़े प्रेम के साथ रहने लगे। एक दिन देवदत्त सुनार को यह विदित हुआ कि मेरी पुत्र-वधू किसी अन्य पुरुष से फंसी है। संयोगवश एक दिन जब वह अपने यार के पास पर्य्यङ्क पर बेसुध सोयी हुई थी, प्रमाणार्थ देवदत्त ने दबे-पांव जा कर उसके एक पैर का आभूषण (नूपुर) निकाल लिया। ससुर ज्योंही नूपुर लेकर उधर चला त्योंही उसकी आंख खुल गयी। बुड्ढे की इस चाल को देख कर वह मन ही मन सोचने लगी कि प्रातःकाल होते ही यह अवश्य अपने पुत्र से सारा वृतान्त कहेगा, अतः मैं चल कर पहले ही से इसका प्रबन्ध कर दूं—बुड्ढे की चाल पर पानी फेर

द। वह धीरे से आकर अपने पति के पलङ्ग पर चुपके से लेट गयी। और थोड़ी देर बाद उसे जगा कर कहने लगी कि "आज मैंने एक बड़ी विचित्र बात देखी, आपके पिताजी अभी यहां (शयनागार में) आये थे और मेरे पैर का आभूषण उतार ले गये हैं, मैं लज्जा-वश उनसे कुछ नहीं कह सकी। मेरा अनुमान है कि वह मेरे ऊपर कोई झूठा अभियोग लगावेंगे। मैं नहीं जानती कि वह मुझ से क्यों इतना खार-खाते हैं? वह तो अवश्य ही मेरे ऊपर झूठा दोषारोपण करेंगे, किन्तु सावधान आप उनके बहकावे में न आइयेगा"। प्रातःकाल होते ही सुनार ने अपने पुत्र से उसकी स्त्री की करतूत कही और नूपुर दिखलाया। पुत्र का कान तो पहले ही से फूंक दिया गया था—चतुर चिकित्सक ने सूची द्वारा सारे शरीर में कपोल-कल्पित दवा की गर्मी फैला ही दी थी, उसने कहा पिताजी "आप तो सठिया गये हैं, आपकी बुद्धि मारी गयी है, अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। बतलाइये, आप हक नाहक ही यह सब बनावटी जाल क्यों रचते हैं, मेरी पतिव्रता स्त्री को झूठा कलंक क्यों लगाते हैं? आप ही कहिये कि जहां पर पुत्र अपनी स्त्री के साथ शयन करता हो, वहां पर आपको जाना चाहिये? जब आप उसके पैर का आभूषण निकाल रहे थे वह जागती थी, बेचारी सुशीला लज्जा के मारे आप से कुछ न बोली। वह तो आप के इस कार्य्य से लज्जित हो गयी किन्तु आपको शर्म न आयी। पिताजी! आप की इस चाल का हाल तो उसने तुरन्त ही कहा था। मैं आप से दावे के साथ कहता हूं कि मेरी स्त्री सुशीला, पतिव्रता और निष्कलंक है। आप निरर्थक ही उसपर झूठा दोषारोपण करते हैं। पुत्र की ऐसी बातें सुन कर देवदत्त चकित हो गया और अपना सा मुंह लेकर रह गया। अब बहू ने भी ससुर पर उलटा घड़ा बांधना आरम्भ किया, वह कहने लगी कि ससुर की इस बात से मेरा बड़ा अपमान हुआ है, मेरे मुख पर कलंक की कालिमा लग गयी

राया। परदेशी राजा की †सूरीकान्ता नारीने पति से अपना अभीष्ट पूरा न होते हुए जान उसे मार डाला।

है, अब जबतक झूठ-सांच का निर्णय न होगा, मेरा मुख उज्ज्वल न हो सकेगा—मैं किसी को मुंह दिखाने योग्य न होऊंगी। उस नगर के देवालय में एक यक्ष की मूर्ति थी। जो कोई असत्यवादी वहां जाकर झूठ बोलता, यक्ष उसे दबा लेता और सत्यवादी निर्भय होकर चला आता था। सुनार की बहू ने भी वहीं जाकर अपने को निर्दोष प्रमाणित करना निश्चय किया। देवालय में जाने के एक दिन पूर्व उसने अपने उपपति को यह सारा वृतान्त सुनाया और कहा कि जब मैं वहां जाने लगूं तब आप मार्ग में आकर किसी भांति मुझे छू लेना। बस मैं सब काम बना लूंगी। वैसा ही हुआ, जब वह देवालय में (धोज पढ़ने के निमित्त) जाने लगी, उसे देखने के लिये बहुत से स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। उसी भीड़ के बीच से पागल की भांति बकते-झकते हुए उसके यार ने आकर उसे छू लिया। वह देवालय में गयी और यक्ष के सन्मुख हाथ जोड़ कर कहने लगी कि "हे यक्ष देव! यदि पति और मार्ग में छू जाने वाले पुरुष के अतिरिक्त किसी पुरुष ने मेरा अङ्ग भी स्पर्श किया हो तो आप मुझे दाब कर मार डालिये, नहीं तो निर्भय कर, मेरे कलङ्क का उन्मोचन कीजिये। यक्ष ने उसे यह देख कर छोड़ दिया कि यार की बात स्वीकार करती हुई जो कुछ कहती है ठीक है। जब वह निर्दोष होकर वहां से चली आयी तो वह सच्ची और ससुर झूठा हो गया। यह बात सारे नगर में फैल गयी और जगह २ देवदत्त की निन्दा होने लगी। यह चरित्र देख बुड्ढे को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसकी नींद हर गयी। सुनार मन में पश्चात्ताप करने लगा कि देखो मैंने इसे साक्षात् पर पुरुष के सङ्ग सोते हुए देखा है मगर अंत में झूठा और वह सच्ची है। वाह रे! त्रिया के चरित्र, क्या खूब!

† प्राचीन काल में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में श्वेताम्बिका नाम की एक

इस विषय में कितना ही प्रकाश डाला जाय, किन्तु अन्त में यही कहना होगा कि "त्रिया-चरित जाने नहि कोय"। पाठक गण! सोचिये कि कपिला ब्राह्मणी ने सुदर्शन सेठ को कितना सताया, हार्दिक कष्ट पहुंचाया और व्रत भंग करने में कुछ

नगरी थी। इस ऋद्धि-सिद्धि समृद्ध नगरी में परदेशी नाम का राजा राज्य करता था। परदेशी राजा स्वभाव का बड़ा ही क्रूर तथा दुष्ट था। जीवों को वध करना और क्लेश पहुंचाना तो उसका सहज स्वभाव था। वह जीव और काया को एक ही मानता तथा पाप और पुण्य किस चिड़िया का नाम है—जानता ही न था अर्थात् जीव हिंसा से पाप होता है इस बात का क़ायल न था। वह "चना-चबेनी" को ही मधुर मोदक समझता था। शरीर से जीव पृथक है या नहीं यह जानने के लिये वह सैकड़ों जीवों को काट-काट कर उसमें जीव की खोज करता था। इसी प्रकार घोर पाप कर्म करता हुआ अपनी प्राण वल्लभा सूरीकान्ता पटरानी के साथ सुखोपभोग कर, सुख से दिन व्यतीत करने लगा। बहुकालोपरान्त एक समय संयोगवश चार-ज्ञान के धनी केशी स्वामी, उस नगर में पधार, राजा की प्रधान ग्यारह शङ्काओं का समाधान कर उन्हें श्रावक-मत अङ्गीकार कराया। राजा जिस प्रकार पहले पाप-कार्य्य में सर्व्वोपरि था, उसी भांति अब धर्म-कार्य्य में श्रावक-शिरोमणि हो गया। वह श्रावक के बारह व्रतों को भलीभांति पालता हुआ वेले २ पारणा करने लगा। राज-पाट तथा स्त्री-पुत्र पर पहले जितना माया-मोह था, उस से कहीं अधिक अब घृणा हो गयी, यहां तक कि राज-काज का सार-सम्भाल भी त्याग दिया। जिस सूरीकान्ता पटरानी को वह प्राणों से भी अधिक मानता था, उसकी भी उसे परवाह न रही। सूरीकान्ता ने अपनी ओर से राजा को इस प्रकार उदासीन देख, मनमें सोचा कि जब राजा मुझ से प्रेम ही नहीं करता—भोग-विलास से मुख मोड़ लिया

ऐसी निन्दित नारियां बुध जनों को त्यागनी सर्वदा,

प्रेतों के थल पै पड़ी घटकियों के तुल्य, दुःखप्रदा ॥

स्त्रियां लालच से कभी खिलखिला उठती हैं, कभी फूट-फूट कर रोने लगती हैं, दूसरे को अपना विश्वास करा देती हैं परन्तु स्वयम् किसी का विश्वास नहीं करतीं। इस लिये बुद्धिमानों को श्मशान भूमि में रखी हुई हंड़ियों के समान स्त्रियों को त्याग देना चाहिये। सुदर्शन सेठ एक मास में चार पोसह करते और रात को श्मशान में जाकर सोते थे। धर्म-कर्म में लवलीन सेठ सपत्नीक सुपात्र दानादिक शुभ कार्य्यों को करते हुए सुख के साथ दिन व्यतीत करने लगे।



तीसरा अध्याय

अभयाका कुविचार और धायकी शिक्षा।

वाटिका विहरण।

धात्री वाहन राजा की अभया पटरानी, बड़ी रूपवती, चन्द्र-वदनी, मृगनयनी और लावण्यता में सुराङ्गनाओं से कुछ कम न थी। वह संसार की विषय-वासनाओं में ही वास्तविक सुख समझ, आनन्द से दिन बिताती थी। चम्पा नगरी के ईशान कोण में एक सुन्दर रमणीय उपवन था, यों तो वह सदैव ही हरा-भरा तथा फूला-फला रहता था, किन्तु वसन्त ऋतु में उसके चित्ताकर्षक गुण और भी बढ़ जाते थे। उस परम रम्य वाटिका में नगर के स्त्री-पुरुष सभी आमोद-प्रमोद कर नेत्रों का सुख उप-

सन पर विराजमान हुए। बड़े २ सेठ-साहूकार, वीर, सामन्त· सेनापति, सकुटुम्ब आकर अपने २ उपयुक्त स्थानों पर आसीन हुए। विषय-वासना में लीन, परभव चिन्ता विहीन अभया रानी भी सपरिवार, बड़े उत्साह पूर्व्वक वहां पर आ बैठी। संयोग से अभया रानी की प्रेम-पात्री, कपिला ब्राह्मणी भी वहीं आकर बैठी जहां रानी बैठी थी। एक प्रकार का स्वभाव होने के कारण दोनों में मेल होना स्वभाविक था। क्योंकिः—

देखी मृग की मृग में प्रीती, रमणी की रमणी के संग।
अश्व प्रीति अश्व हि में करता मूरख जन मूरख के संग।
जो होते हैं ज्ञानवान नर उनके प्रीतिपात्र ज्ञानी,
इसी लिये सम शील व्यसन के पुरुषों में प्रीती मानी॥

पाठक गण! अब अभया रानी की वही दशा होगी जो दुर्व्यसनियों के संग से हुआ करती है।

वाटिका में सुदर्शन सेठ।

बाग में सभी सेठ-साहूकार आये थे, अस्तु! सेठ सुदर्शन भी अपनी मनोरमा सुपत्नी और देवकुमार सरीखे चारों पुत्रों के साथ पधारे। ब्रह्मचर्य्य-वस्त्र तथा जिन भगवान् की भक्ति-भूषण को धारण किये हुए सेठ सब महाजनों के मध्य इस प्रकार शोभायमान हुए जैसे नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा। उस समय बाग की शोभा ने और भी सुखमा धारण की। ज्योंही सुदर्शन

सेठ अभया रानी के महल के नीचे आये त्योंही वह झरोखों से झांक कर, सेठ की सौन्दर्य्यता और रूप लावण्यता विलोकि ज्ञान शून्य हो गयी। चकोरी कौमुदी को देख कर अपने आप को भूल जाती है, आलोक की छटा पर पतंग अपना जीवन भूल जाता है, अतएव चन्द्रकान्त आनन को देख कर अभया रानी अपने को भूल गयी। प्रेमास्पद के मुखावलोकन का आनन्द प्रेमी ही जानता है। किसी को देख २ कर भूले रहने में क्या कुछ कम माधुर्य्य है? अस्तु! रानी सेठ की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी और उसके सर्वाङ्ग में एक प्रकार की सुधा का सञ्चार हो गया। वह मन ही मन विचार करने लगी कि जिस स्त्री को ऐसे पुरुष से सुख भोगने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह धन्य है। धन्य है जिसने इस पुरुष-शिरोमणि द्वारा देव कुमार तुल्य चार बाल-रत्न प्राप्त किये हैं।

कपिला और अभया की बातचीत।

रानी ने दासी से पूछा कि "यह चार पुत्रों सहित आये हुए स्त्री-पुरुष कौन हैं"। दासी बोली, "महाराणी यह सुदर्शन सेठ और उनकी मनोरमा स्त्री है, आप ही के ये चारो पुत्र हैं, आप नगर के सेठों में शिरताज हैं"। दासी की बात सुन, समीप में बैठी हुई, कपिला ब्राह्मणी मुंह मटका कर बोली "दासी तू इस बात से अनभिज्ञ है, तुझे इस बात का पूरा ज्ञान नहीं। यह पुत्र सेठ सुदर्शन के नहीं हैं, जैसे अग्नि से दग्ध सूखे वृक्ष

सुदर्शना-चरित्र



देखने लगे, और उनके प्रकाश में एक प्रकार की, सुधा का संचार

सेठ अभया रानी के महल के नीचे आये त्योंही वह झरोखों से झांक कर, सेठ की सौन्दर्य्यता और रूप लावण्यता विलोकि ज्ञान शून्य हो गयी। चकोरी कौमुदी को देख कर अपने आप को भूल जाती है, आलोक की छटा पर पतंग अपना जीवन भूल जाता है, अतएव चन्द्रकान्त आनन को देख कर अभया रानी अपने को भूल गयी। प्रेमास्पद के मुखावलोकन का आनन्द प्रेमी ही जानता है। किसी को देख २ कर भूले रहने में क्या कुछ कम माधुर्य्य है? अस्तु! रानी सेठ की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी और उसके सर्वाङ्ग में एक प्रकार की सुधा का सञ्चार हो गया। वह मन ही मन विचार करने लगी कि जिस स्त्री को ऐसे पुरुष से सुख भोगने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह धन्य है। धन्य है जिसने इस पुरुष-शिरोमणि द्वारा देव कुमार तुल्य चार बाल-रत्न प्राप्त किये हैं।

कपिला और अभया की बातचीत।

रानी ने दासी से पूछा कि "यह चार पुत्रों सहित आये हुए स्त्री-पुरुष कौन हैं"। दासी बोली, "महाराणी यह सुदर्शन सेठ और उनकी मनोरमा स्त्री है, आप ही के ये चारो पुत्र हैं, आप नगर के सेठों में शिरताज हैं"। दासी की बात सुन, समीप में बैठी हुई, कपिला ब्राह्मणी मुंह मटका कर बोली "दासी तू इस बात से अनभिज्ञ है, तुझे इस बात का पूरा ज्ञान नहीं। यह पुत्र सेठ सुदर्शन के नहीं हैं, जैसे अग्नि से दग्ध सूखे वृक्ष

में फूल-फल नहीं लगते, वैसे ही पुरुषत्व हीन पुरुष के संतति नहीं हो सकती। सेठ नपुंसक हैं इसमें तिल-मात्र भी सन्देह नहीं। कपिला की यह बात सुन रानी चकित हो गयी और उसे एकान्त स्थान में ले जाकर सारी बातें पूछीं। रानी ने कहा "कपिला सेठ के नपुंसकत्व का भेद तूने कैसे जाना? मुझे इस विषय की समस्त बातें निस्सङ्कोच होकर बता"। कपिला ने अपनी सारी राम-कहानी, अक्षरसः ज्यों की त्यों कह सुनायी। अभया रानी ने हंस कर कहा कि "कपिला तू तो बड़ी निर्बोध और निपट अजान जान पड़ती है। मालूम होता है कि तुझे पुरुषपने का कुछ भी ज्ञान नहीं, तू पुरुष को वश करने की कला से विहीन है। सेठ असत्य बोल कर तुझे छल ले गया"। यह सुन कपिला बोली "अच्छा रानी, तुम तो बड़ी चतुर-सुजान और जानकार हो, यदि सेठ सुदर्शन के संग भोग-विलास का सुख प्राप्त कर लो तो तुम्हारी बात मेरे शिर-माथे है, मैं हारी और तुम जीती"। रानी ने गर्व पूर्ण शब्दों में कहा, "कपिला यदि संसार में रह कर मैं सेठ के सङ्ग रमण न करूं तो मेरे मुंह पर धूल डाल देना। क्या तू नहीं जानती कि स्त्री ने बड़े २ सुर, नर, योगी और यतियों को वश कर बन्दर की नाच नचाया है, तो यह बेचारा सुदर्शन सेठ किस खेत की मूली है। नारी की मृदु मुस्कानि से निर्मित कपोलों की मदन-तलाई में कौन नहीं डूब जाता? स्त्री के गुलाबी गोल-गाल, लोना सलोना मुख, उलझन वाले बाल, लोल लोचन, स्पन्दन शील ओठ किस पर शासन नहीं कर सकते? नारी के

भ्रूभङ्ग-भय से किस के प्राण नहीं कांपने लगते ? कैकेयी की रुष्टता के कारण राजा दशरथ घबड़ा उठे, राधा ने कृष्ण को मोहित किया, अहिल्या ने इन्द्र को वश में कर लिया, कहां तक गिनावें स्त्रियां तो इस विषय में स्वभावतः प्रवीण होती हैं, पुरुष को वश में करना स्त्रियों के बांये हाथ का खेल है। हजारों पुरुषों को मोहित कर नारी ने अपना दास बना रखा है। पर तू सेठ सुदर्शन को भी न डिगा सकी तो अवश्य ही गंवारिन और मूर्खा है"। कपिला ने उत्तर दिया कि महाराणीः—

तावद्गर्जति फूत्कारैः काद्रवेया विषोत्कटाः।

यावन्नो दृश्यते शूरो वैनतेयः खगेश्वरः॥

अर्थात्—विष से उत्कट सर्प तभी तक फुंकार सकता है जब तक उसके मान को मर्दन करने वाला गरुड़ पक्षी आकर सामने उपस्थित नहीं होता। तभी तक आप बढ़ २ बातें मारती हैं जब तक काम नहीं पड़ता, यदि सेठ सुदर्शन को आप वश में कर लोगी तो मैं तुम्हें विचक्षणा तथा प्रवीणा जानूंगी; नहीं तो मैं जैसी और तुम तैसी। रानी ने कहा—"सुन! मैं तेरी जैसी नहीं हूं, अगर मैं सेठ के सङ्ग सुख न भोगूं तो अभया मेरा नाम नहीं"। बात २ में यह बात बढ़ गयी, दोनों के जोश आ गया, जिद वाद बढ़ गया और इस वार्त्तालाप ने दूसरा रूप धारण किया। कपिला ने हाथ मार कर कहा "रानी साहबा! संसार में ऐसी कोई स्त्री नहीं है जो सुदर्शन सेठ को वश में कर सके "इन तिलों में तेल नहीं" यह तो

भूड़के लड्डू हैं "जो खायगा सो पछतायगा और जो न खायगा सो पछतायगा"। यदि सेठ नपुंसक हैं तब तो कोई बात ही नहीं और यदि सेठ में पुरुषत्व है तो देवांगना भी आकर इन्हें नहीं डिगा सकतीं। चाहे सुमेरु पर्वत चलायमान हो जाय, सूर्य्य पश्चिम में उदय हो, बेत फूलने-फलने लगे, पत्थर की नाव पानी में तैरने लगे किन्तु सेठ सुदर्शन का शील-व्रत भङ्ग होना असंभव है। इसलिये, रानीजी! मेरा कहा मानो, सेठ की आशा छोड़ दो "कहीं दूध के धोखे कपास न खा जाना"। मैंने हर पहलू से इनकी परीक्षा कर, माथा-पच्ची कर ली है। इस प्रकार अभया रानी और कपिला ब्राह्मणी में चन्द मिनट के लिये वाक्-युद्ध मच गया। आखिरकार, होनहार प्रबल होता है "जैसी हो भवतव्यता वैसी उपजै बुद्धि" के अनुसार जब जैसे कर्मों का उदय होता है वैसी ही मति पलट जाती है। अतः रानी ने सेठ से मिलने की मन में ठान ली।

अभया की सेठ मिलन लालसा।

वसन्त ऋतु के आनन्दोपभोग के पश्चात् रानी महल में आकर सेठ से मिलने के अनेकानेक उपाय करने लगी। लाख प्रयत्न करने पर भी कोई काम बनते न देख रानी ने अपनी पण्डिता नामक धाय को बुलाया और उस से कहा कि "हे माता! तूने बालकपन से, बड़े लाड़-प्यार के साथ, मुझे पाला-पोसा तथा मेरी इच्छाओं की पूर्ति में हाथ बटाया है, अतः तुझ से कोई बात छिपा

धार रखना मैं उचित नहीं समझती। यद्यपि बात बड़ी लज्जा पूर्ण है तथापि तुझ से कहे बिना काम नहीं बनता। धाय! मेरा विश्वास है कि कार्य्य को तुझ से गोपन रखना ही उसकी सफलता को उपेक्षा की दृष्टि से देखना है। अस्तु! तुम इसे ध्यान पूर्व्वक सुनो और मेरी अभिलाषा को पूर्ण करो। मैं राजा के साथ उपवन में वसन्त ऋतु देखने के लिये गयी थी, वहां पर चम्पा नगर के सभी आबाल-वृद्ध-वनिता बड़ी सज-धज के साथ पधारे थे। बड़े २ सेठ-साहूकार, सिपाही-सामन्त, धीर-वीर पुरुषों का जमघट था, किन्तु अपनी स्त्री मनोरमा तथा पुत्रों के सहित आये हुए सेठ सुदर्शन की समता कोई नहीं कर सका। चन्द्रमा के उदय होने पर नक्षत्रों की जो दशा हो जाती है, ठीक वही दशा सुदर्शन सेठ के अवस्थित काल में अन्य श्रेष्ठ पुरुषों की थी। उनका दिव्य शरीर, बड़े बड़े नेत्र, दीर्घबाहु, विशाल वक्षस्थल, सूर्य्य का सा प्रकाश, चन्द्रमा की सी शीतलता और समुद्र की सी गम्भीरता ने मेरे हृदय को बलात् अपने वश में कर लिया। हे माता! उस सुकुमार, लावण्यमय रूप में न जाने कौन सी शक्ति भरी थी जिसने बर-जोरी मेरे मन को खींच लिया। उस छैल के आगे बड़े २ राव-राजा झख मारते हैं। मेरा मन उससे लग गया है। मैं रात-दिन उनसे मिलने का उपाय सोचा करती हूं। जब से मैंने उन्हें देखा मेरी भूख-प्यास दूर गयी, किसी काम में जी नहीं लगता, न कुछ अच्छा ही लगता और न कुछ सोहाता ही है। किसी की बात अच्छी नहीं लगती, दिल उचटा

रहता है। मैं उनपर इस प्रकार मोहित हो गयी हूं कि जब तक उनसे मिलने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता तब तक मैं दिन प्रति दिन तन क्षीण होती जा रही हूं। मैंने कपिला ब्राह्मणी से हाथ मार कर कहा है कि मैं सेठ के संग रमण कर उन्हें अवश्य-वश में करूंगी।। यदि मैं ऐसा न कर सकी तो मेरी बात मिट्टी में मिल जायगी। इसलिए तू मेरी मनोकामना की पूर्ति करने में सहायक हो। मैंने हृदय खोल कर कच्ची-पक्की सभी बातें तेरे सामने कह दी हैं, अब तू मुझे सुदर्शन सेठ से शीघ्र मिला। मेरा इतना उपकार कर। सौ बात की एक बात यह है कि यदि तू सच्ची मेरी हितैषिणी है, मुझे दिल से चाहती है—जी-जान से मानती है—तो बिना किसी आना-कानी के शीघ्र सुदर्शन सेठ को मेरे पास लिवा ला"।

पंडिता धाय की सुशिक्षा।

रानी के वचन सुन कर पण्डिता धाय सन्न हो गयी। उसे हार्दिक वेदना हुई और वह सिर धुन कर पश्चात्ताप करने लगी। बहुत कुछ सोच-विचार करने के पश्चात् धाय ने सदोपदेश पूर्ण बातों से रानी का चित्ताकर्षक कर, सत्मार्ग की ओर लाने की चेष्टा की। धाय ने कहा कि "रानी क्या तेरी मति मारी गयी है? तू बावली तो नहीं हो गयी? भला ऐसे गर्हित मार्ग में पैर रखना क्या तू जैसी पटरानी, सत्कुलोत्पन्न रमणी को शोभा देता है? हाय! हाय!! ऐसी चतुर-सुजान होकर तूने ऐसे निकृष्ट

विचारों को हृदय में कैसे स्थान दिया—यह नीच बात मुंह से कैसे निकाली। पुत्री! यह दुष्कर्म तुम्हारे उभय पक्ष—सास-ससुर और माता-पिता—की उज्ज्वल कीर्त्ति पर सदैव के लिये, कलङ्क का धब्बा लगा देंगे। तुम्हारे द्वारा ऐसे निन्दनीय कार्य्य को सुन कर किसे आश्चर्य्य न होगा—कौन नहीं लज्जित होगा? बड़े २ राजा-महाराजाओं में इस समय तुम्हारी धाक जमी हुई है वह सब इज्जत धूल में मिल जायगी। जो सुनेगा वही थूंकेगा और फिर तू किसी भी तरह इस लोकापवाद का मार्जन न कर सकेगी। रानी! देखो तुम्हारे पिता ने सुन्दर वर देख, एक प्रतिष्ठित घराने के सुयोग्य पुरुष को तुम्हें सौंपा है, अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि प्रेम के साथ, सद्भाव से, अपने स्वामी की सेवा करो। [अपना पति चाहे बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, कुरूप, कपटी, धनहीन, अन्धा, बहिरा, क्रोधी, और दुष्ट या दुर्बल हो, किन्तु सुशीला—पतिव्रता स्त्री—के लिये वह इन्द्रादि देवताओं से भी बढ़ कर है, उत्तम स्त्री के मन में ऐसा निश्चय हो जाता है कि उसके लिये जगत में अपने पति के सिवाय, स्वप्न में भी, और कोई पुरुष ही नहीं है। मध्यम स्त्री दूसरी स्त्री के पति को वैसे देखती है जैसे अपना भाई, पिता या पुत्र हो। जो स्त्री धर्म को विचार कर और कुल की रीति को समझ कर रह जाय (अर्थात् चित्त तो पर पुरुष को देख कर चलायमान हो जाय, पर मेरा धर्म बिगड़ जायगा, मेरे कुल में कलङ्क लग जायगा इत्यादि बातों को सोच कर चित्त को रोक ले). वह स्त्री निकृष्ट और जो स्त्री अवसर न

रही है और फिर भी आंखों में धूल डालती है। सच बता,
पुरुष को लेकर तू कहां जायगी"। द्वारपाल की ऐसी बातें सु
ही, धाय ने पुतले को पृथ्वी पर पटक कर सात खण्ड कर ड
और क्रोधित होकर बोली, "देख! यह मिट्टी का नहीं तो किस
है। अरे मूर्ख द्वारपाल तू ने रानी के व्रत में जो बाधा पहुंचा
है, इसका मजा चखाऊंगी और रानी से कह कर तुझे प्राण-द
दिलाऊंगी"। इतना सुनते ही द्वारपाल कांपने लगा, उस
छक्के छूट गये और घबड़ा कर, धाय के चरण पकड़ कर बोल
"माता इस बार मेरी रक्षा करो, मुझे जीव-दान दो। तुम्हा
इस उपकार को मैं कभी न भूलूंगा"। धाय ने देखा कि काम तो ब
गया, अतः वहां से चल दिया। दूसरा पुतला लेकर दूसरे फाट
पर पहुंची और इसी चालसे उसे भी अपने वशमें कर लिया। उ
युक्त ढङ्ग से सभी द्वारपालों को अपनी मुट्ठी में कर, धाय अ
निर्भय हो कर आने जाने लगी, उस से कोई चूं भी न कर सकत
था।





धाय ने पुतले को पृथ्वी पर पटक कर सात खण्ड कर डाले और क्रोधित होकर बोली, देख! यह मिट्टी का नहीं तो किसका है। [...]

चौथा अध्याय

अभयाकी काम चेष्टा और सेठकी दृढ़ता।

श्मशान से सेठ को उठा लाना।

पण्डिता धाय जब फाटक-प्रवेश के जाल-युद्ध में विजयी हो गयी, तब सेठ सुदर्शन के लाने का उपाय सोचने लगी। एक दिन श्मशान में जाकर देखती है कि चारों ओर से धुएं के बादल अन्धकार पर इस प्रकार से राज्य शासन कर रहे हैं कि वहां मानो बेचारे दिवाकर की दाल ही नहीं गलने पाती। कहीं श्वान और श्रृगाल मुर्दों की हड्डियां चूस रहे हैं तो कहीं कौवे आंख और मांस नोच २ कर खा रहे हैं। कहीं घूघू बोलता है, तो कहीं मंडराती हुई चीलें और हड़गिल्ल भयानक रव कर रहे हैं।

ऐसे भयावह स्थान में ध्यान लगाये हुए सुदर्शन सेठ बैठे हैं। पशु-पक्षियों और भूत-प्रेतों के कोलाहल से भी उनका ध्यान नहीं डिगता—चाहे पृथ्वी चलायमान हो जाय, सुमेरु पर्व्वत चलने लगे, सूर्य्य और चन्द्रमा अपने नियमों को भङ्ग कर दें; किन्तु अर्हत धर्मका उपासक, दृढ़ धर्मी और दृढ़ात्मा अपने धर्म-ध्यान से विचलित नहीं हो सकता। पण्डिता धायने उपयुक्त समय समझ साहस पूर्व्वक, सेठ को अपने कन्धे पर बिठा लिया। पाठक-गण! इसमें कोई आश्चर्य्य की बात नहीं, स्त्री बहुत कुछ कर सकती है, कहा है कि:—

असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चातिलुब्धता।
निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥

अर्थात्—झूठ, साहस, छल, ईर्षा, अत्यन्त लोभ, निर्गुणता और अशुद्धता ये दोष स्त्रियों के स्वभाव ही से होते हैं। अतः धाय ऐसे कठिन कार्य्य के करने में ज़रा भी न हिचकी और सेठ सुदर्शन को श्मशान से अभया रानी के महल में ले आयी। धाय सेठ को एक कमरे में बिठा कर, रानी से जाकर बोली "पुत्री! मैं सेठ को सकुशल ले आयी हूं, अब तू जाकर अपने मनकी निकाल—हौसिला पूरा कर ले।

अभया-सुदर्शन मिलन।

धाय के मुख से सुदर्शन सेठ के महल में आने की बात सुनते ही रानीका शरीर पुलकित हो उठा, आनन्द की सीमा न

रही और इस प्रकार प्रसन्न हुई कि "मनहु अन्ध फिर लोचन पाये"। वह मनमें विचार करने लगी कि, आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो सेठ मेरे महल में आये हैं, यह समय और यह घड़ी धन्य है, अब उनके पास चल कर मैं भी अपने को धन्यवाद का पात्र बनाऊं अर्थात् जीवन का फल भोगूं। रानी ने स्नान मर्दन कर, सुवासित अतर-फूलेल लगा, चोवा-चन्दन का लेप किया और शिख से नख तक वस्त्राभूषण धारण कर, सोलहो श्रृङ्गार किया। रानी की सुन्दरता योंही कुछ कम न थी किन्तु अच्छे २ अलंकारों से अलंकृत होने के कारण शोभा और भी बढ़ गयी। कामदेव के मङ्गल कलश के समान उन्नत उरोज, गम्भीर नाभि, उन्नत नितम्ब, कदली स्तम्ब सी जङ्घाएं और कमल के समान कोमल चरणवाली, देवांगनाओं की भांति, पान चबाती-मुस्कराती, बड़े गरूर के साथ, जवानी के जोम में, मत्तगयन्द की गति को लजाती हुई रानी सेठ सुदर्शन के समीप चली। चलते समय उसकी कंचन-काया की प्रभा से विद्युत्छटा और नूपुर की झङ्कार से वीणा के मधुर-स्वर का अनुभव होता था। वह मन ही मन सोचती थी कि सेठ देखते ही मुझ पर आसक्त (मुग्ध) हो जायंगे, मेरी नेह भरी नज़रें उनके चित्त को चञ्चल बना देंगी। मैंने तो पहले ही कपिला से कह दिया था कि यदि मैं सेठ के संग सुख न भोगूं तो अभया मेरा नाम नहीं। इस प्रकार मन-मोदक खाती, प्रसन्न होती और मनोरथ-सिद्धि के लिए, कुलदेव, ग्राम-देव तथा देवी-देवताओं से प्रार्थना करती हुई सेठ के निकट

आयी। प्रथम तो सेठकी सुन्दरता देख उसकी टक-टकी बन्ध गयी, मोह में मुग्ध होकर कुछ देर के लिए चित्र की भांति ज्यों की त्यों निर्निमेष खड़ी रही, मानो—"देखि लाग मधु कुटिल किराती, जिमि गंव तकै लेउं केहि भांती"—सेठ को प्रेम-पाश में फांसने की क्रिया सोचने लगी। तदुपरान्त रानी मधुर स्वरों से नम्रता पूर्वक इस प्रकार बोली:—"प्यारे! मैं अभया रानी हूं, आप से मेरा मन लग गया है। एतदर्थ मेरी धाय आपको यहां ले आयी है। कृपया मुझ काम-भिखारिनी की मनोभिलाषा पूर्ण कर, मेरा मानव जीवन सफल कीजिये। आप नेत्र खोलिये और देखिये कि जिस सुख प्राप्ति की इच्छा से आप यह कठिन तपस्या कर रहे हैं वह सुख आप को यहीं प्राप्त हुआ है,—पूर्व जन्म की वात कौन देख आया है, जो कुछ है सब यहीं हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि लहलहाती हुई काम-वाटिका में विहार करते हुए जवानी के जोश में भरी हुई निम्बू-नारंगियों का आनन्द लूटिये। देखिये:—

कोमलता कंजते गुलाबते सुगन्ध लै कै,
चन्दते प्रकाश कियो उदित उजेरो है।
रूप रति आननते चातुरी सुजाननते,
नीर लै निवाननते कौतुक निवेरो है।
रानी कहत लै मसालो विधि कारीगर,
रचना निहारी जन होत चित चेरो है।

कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को,

वसुधा को सुख लूटिके बनायो मुख मेरो है ॥

अतः मुझ जैसी रमणी के संग रमण करने से मुख न मोड़िये। आये हुए ऐसे सुअवसर को हाथ से न जाने दीजिये। प्रेम में विह्वल होने के कारण उस समय उसकी आंखे अध खिले फूलों की भांति अश्रु-हिम कणों से आच्छादित हो गयीं। उसने कहा, प्राणवल्लभ! मेरी आशा पूर्ण करो, मैं तुम्हें हर प्रकार से सन्तुष्ट कर, किसी वस्तु की कमी न रखूंगी। धन-दौलत, मोती-माणिक और हीरा-जवाहिर से तुम्हे माला-माल कर दूंगी—जो चाहोगे वही दूंगी।

सुदर्शन की दृढ़ता।

रानी के अनुनय-विनय करने और नाना प्रकार से प्रलोभन देने पर भी सेठ का मन धर्म-ध्यान से विचलित न हुआ। थोड़ी देर बाद जब सेठ ने ध्यान पूरा किया तो सामने कामोन्मत्त अभया रानी को देख कर उनका शरीर कांपने लगा। उन्हों ने सोचा कि यह एक बड़ी विकट समस्या आ उपस्थित हुई है। इस कलंक की कालिमा लगाने वाली कंकालिनी कामिनी से पीछा छुड़ाना-बड़ा ही कठिन है, किन्तु इस समय कायरता से काम न चलेगा। यदि मेरा मन दृढ़ है तो ऐसे सैकड़ों उपसर्ग आने पर भी बाल बांका न होगा। आयी हुई विपत्ति को जान कर शूर-वीर सन्मुख उपस्थित होते हैं और कायर मुंह छिपा कर भाग जावे

हैं। भला इस यत्किञ्चित मोहनीय कर्म के चक्कर में पड़ कर—कल्पित छणिक सुख के लिये—मैं अपने सुख मूल जिन धर्म के सिद्धान्तों को कैसे छोड़ सकता हूं। फिर भी इस भोग-विलास की मृगतृष्णा से क्या लाभ जिस में कि:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

अर्थात्—विषय भोगने से विषय की कभी भी शान्ति नहीं होती; किन्तु अग्नि में घृत डालने से जिस प्रकार अग्नि की अभिवृद्धि होती है, उसी प्रकार काम की भी वृद्धि होती है। इत्यादि बातें विचार कर उन्होंने अपने मन को दृढ़ कर लिया और अभया रानी को सामने खड़ी हुई देख शीलव्रत के गुणों का चिन्तवन करने लगे। ब्रह्मचर्य्य एक ऐसा बड़ा गुण है कि इसका सेवन करते रहने से दूसरे सब गुण स्वयम् ही आकर मिल जाते हैं। ब्रह्मचारी पुरुष के लिये कोई भी काम, कोई भी सिद्धि, कौनसा भी ज्ञान दुष्कर नहीं है। वह चाहे तो कठिन से कठिन कार्य्य को भी पूरा कर सकता है। शास्त्र में लिखा है:—

"देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा
बंभयारी नमं संति, दुक्करंजे करंति ते"

अर्थात्—ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करने वाले को देव, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और किन्नरादि सब नमन करते हैं। व्रतों में शील प्रधान व्रत है, इसके सहारे भव्य जीव सद्गति को प्राप्त

होकर क्रमानुसार मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैसे नक्षत्रों में चन्द्रमा, रत्नों में वैडुर्य, फूलों में अरविन्द, समुद्रों में रत्नागर, आभूषणों में मुकुट और वस्त्रों में खूंम (मखमल) श्रेष्ट है, वैसे ही सूत्रों में भगवान् ने शील की उपमा दी है। शील से विष अमृत हो सकता है, अर्थात् समुद्र की थाह मिल सकती है और हर प्रकार की विपत्तियों का शमन हो सकता है। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने इसके महत्त्व को जान कर, इसे अङ्गीकार किया है। इस उत्तम शील-व्रत को धारण कर, अनेक जीव संसार सागर से पार हो, सदा के लिये आवागमन रहित हो गये हैं। जे लम्पट पुरुष (मैथुन सेवन कर) शील-व्रत से विचलित हो गये हैं, वे नरक निगोद में जा, असह्य परिताप सहन कर, नाना प्रकार की व्याधियों से व्यथित हुए हैं। अतएव इस रानी जैसी अनेकों रमणियां आ जांय अथवा स्वयम् इन्द्राणी भी सामने आ कर खड़ी हो जांय तो भी मैं अपने शील-व्रत को भङ्ग न करूंगा—मेरे लिये जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा सर्वथा अनुलङ्घनीय है।

संयम लेने की प्रतिज्ञा।

सुदर्शन सेठ ने सात्विकता पूर्वक, साहस करके तत्क्षणात् यह अभिग्रह धारण किया कि यदि इस बार इस उपसर्ग से बच जाऊं—इस काजल की कोठरी से बेदाग निकल जाऊं तो अपने पुत्र को गृहस्थी का भार सौंप, मैं संयम लेकर अपना बेड़ा पार कर दूं और सदैव के लिये इन सांसारिक झंझटों से छुटकारा पा

मायाविनी के माया जाल में पड़ कर निरन्तर दुःख ही दुःख झेलने पड़ेंगे। यदि यौवनावस्था प्राप्त सुराङ्गना भी मेरे सन्मुख आकर उपस्थित हो तो मेरे लिये विष तुल्य है, मैं तो निर्वाण सुख का इच्छुक हूं। इत्यादि बातें सोच, मन में दृढ़ता धारण कर, तरङ्ग शून्य समुद्र के समान ध्यानावस्थित हो गये।

अभया की अन्तिम चेष्टा।

जब अभया रानी ने देखा कि मेरे कुटिल-कुचक्र के कठिन आघात से भी इसका पाषाण हृदय दुर्भेद्य ही बना रहा तब तो उसे अत्यन्त अवसाद हुआ—वह लज्जित सी हो गयी। फिर उस क्लान्तमना ने आमर्ष पूर्ण शब्दों द्वारा सेठ की धूल झाड़नी आरम्भ की—"सेठ यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो मेरी बात अङ्गीकार करो, नहीं तो पीछे से पछताओगे। मैं बड़ी आग्रह से कहती हूं कि "ऊंची दुकान का फीका पकवान" मत बनाओ। लोगों के मुंह से मैंने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है पर यह तुम्हारी सठता पूर्ण हठता तुम्हारे सुनाम में बट्टा लगाती है। पुरुष का हृदय कोमल होता है पर तुम तो पाषाण से भी कठोर हो। देख सेठ! मुझ जैसी रूप लावण्य सम्पन्ना नवयुवती के साथ यदि तूने रमण न किया तो संसार में तेरा जीना अजागलस्तन की भांति निरर्थक ही है। प्यारे! क्यों इतनी बेरहमी इख्तियार करते और अपनी जान जोखों में डालते हो। ये प्यारे! बोल, मुंह खोल, मेरी इस बेचैनी पर तरस खा। कहा मान, मान जा,



देख सेठ! मुझ जैसी रूप-लावण्य सम्पन्ना नवयुवती के साथ यदि तू ने रमण न किया तो जीना अजागलस्तन की भांति निरर्थक ही है।

अब भी आकर मेरे गले से लिपट जा, नहीं तो तेरे सिर पर भूठा कलङ्क मढ़ कर तुझे मुंह दिखाने योग्य न रखूंगी। इस भांति नाना प्रकार की बातें बोलती, शाम, दाम, दण्ड, भेद का उपयोग करती हुई रानी सेठ के सन्मुख विवर-मुख से भयङ्कर वचन निकाल रही है, परन्तु उसके सभी प्रयत्न आरण्य रोदन की भांति निष्फल हो रहे हैं, सेठ पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल बैठे हैं।

अभया का पश्चात्ताप।

इसी रगड़े-झगड़े में इधर सारी रात बीत गयी उधर रानी की आशा लता पर तुषार की वर्षा हो गयी। जब रानी की दृष्टि प्राची दिशि की अरुणता पर पड़ी तब निराश हो लम्बी सांसें भरने लगी। दिवाकर के प्रकट होते ही इस कुमोदिनी का चन्द्रानन कुम्हला गया और मनोरथ-तारे मन्द पड़ गये। रानी सेठ की आशा छोड़, कमरे के बाहर आ खड़ी हुई, लज्जा के मारे मरी जा रही थी, आंखों से आंसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी। इसी समय उसने अपनी पण्डिता धाय को बुला कर कहा, "माता! अब कोई उपाय सोचो, सेठ तो नपुंसक निकला। हाय! इसके साथ तो मुझे मुंह की खानी पड़ी। मेरा कोई भी कार्य्य न सरा, उल्टे लेने के देने पड़े। हाय! लज्जा हीन होने पर भी मन को मन ही में रहीं। माता! इस समय मेरी मति मारी गयी है, मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रही हूं। जान पड़ता है कि अब मेरे अशुभ

दी। राजा की यह दण्डाज्ञा विजली की भांति सारे शहर में फैल गयी और सम्पूर्ण नगर में आतङ्क छा गया। नगर निवासी चिन्तित हो, चिन्ता के चाक में चढ़ चक्कर काटने लगे। वे बड़े आश्चर्य के साथ परस्पर में विचार करते हैं कि ऐसे गुणज्ञ सेठ को राजा ने शूली की आज्ञा कैसे दे दी ? जान पड़ता है कि राजा के निकट कोई सुमंत्रणा देनेवाला पुरुष नहीं रहा है, कहा है कि:—

दुर मंत्र से नृप नष्ट अरु यति संग से, सुत लाड़ से,
द्विज ज्ञानके बिन, कुल कुसुत से, शील खल सहवास से।
सलिपन अरातिक, कुनय से वृद्धी, विदेश निवास से—
रति, मद्य से लज्जा, कृषी बिन जांच, द्रव्य प्रमाद से॥

अर्थात्—दुर्विचार से राजा, बहुत परिग्रह के धारण करने से यति, अधिक लाड़-प्यार से पुत्र, विना विद्याभ्यास के ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्टों के सहवास से स्वभाव, स्नेह के न रखने से मित्रता, अनीति से समृद्धि, परदेश में रहने से स्नेह, मद्यपान से लज्जा, देख-रेख न करने से खेती और छोड़ देने वा प्रमाद से धन नष्ट हो जाता है। इसलिये राजा को चाहिये कि विना भली-भांति सोचे विचारे किसी कार्य्य को शीघ्रता से न कर डाले। सुदर्शन सेठ बड़े गुणवान और अखण्ड शीलव्रत के धारक हैं। भगवान् जानें, यदि उनके पूर्व संचित पाप कर्मोंका उदय हुआ हो तब तो बात ही दूसरी है, नहीं तो

नगर में यह एक अघटित घटना घटेगी—ऊंट चढ़े पर कूकर काटने की यह एक पहली बात होगी।

प्रजा की पुकार।

प्रजा ने मिल कर यह परामर्श किया कि, चलो हम सभी प्रजागण, राजा की शरण में चलें और एक स्वर से सेठ के छुटकारे के लिए प्रार्थना करें। राजा पिता के तुल्य है, राजभक्त प्रजा का कर्तव्य है कि राजा का शुभ चिन्तवन करते हुए यथासाध्य राज्य में किसी प्रकार का अन्याय न होने दे। नगर निवासी एकत्रित हो, राजा के निकट जा, हाथ जोड़ कर बड़े करुणा पूर्ण शब्दों में बोले, "महाराज! सेठ सुदर्शन बड़े सज्जन और सत्पुरुष हैं। पर-स्त्री-गमन की बात तो दूर रही, इन्हों ने स्वयम् अपनी गृहणी का ही परिहार कर दिया है। नगर में यह सर्व मान्य और श्रेष्ठ पुरुष हैं। इनकी उदारता, परोपकारिता और गुणग्राहिता अवर्णनीय है। इनका यश देश-देशान्तरों में फैला हुआ है। यह बात सभी जानते हैं कि चाहे सुमेरु पर्व्वत चलायमान हो जाय, सूर्य्य शीतलता ग्रहण कर लें और चन्द्रमा से अग्नि के कण निकलने लगें; किन्तु सेठ सुदर्शन शील-व्रत से विचलित नहीं हो सकते। जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा शोभायमान होता है, उसी प्रकार चम्पानगर में सेठ सुदर्शन। यदि सेठ के पूर्व्व संचित कर्मों का उदय हुआ हो तो हमें खबर नहीं, ज्ञानी भगवान् ही [illegible] ...लक, विवेकशील और ब्रह्मचर्य्य व्रत [illegible] ...ग हैं"।



महाराज! सेठ सुदर्शन बड़े सज्जन और सत्पुरुष हैं। पर-स्त्री गमन की बात तो दूर रही, इन्होंने स्वयम् अपनी गृहणी का ही परिहार कर दिया है

[पृष्ठ—६७]

नगर में यह एक अघटित घटना घटेगी—ऊंट चढ़े पर कूकर काटने की यह एक पहली बात होगी।

प्रजा की पुकार।

प्रजा ने मिल कर यह परामर्श किया कि, चलो हम सभी प्रजागण, राजा की शरण में चलें और एक स्वर से सेठ के छुटकारे के लिए प्रार्थना करें। राजा पिता के तुल्य है, राजभक्त प्रजा का कर्तव्य है कि राजा का शुभ चिन्तवन करते हुए यथासाध्य राज्य में किसी प्रकार का अन्याय न होने दे। नगर निवासी एकत्रित हो, राजा के निकट जा, हाथ जोड़ कर बड़े करुणा पूर्ण शब्दों में बोले, "महाराज! सेठ सुदर्शन बड़े सज्जन और सत्पुरुष हैं। पर-स्त्री-गमन की बात तो दूर रही, इन्हों ने स्वयम् अपनी गृहणी का ही परिहार कर दिया है। नगर में यह सर्व मान्य और श्रेष्ठ पुरुष हैं। इनकी उदारता, परोपकारिता और गुणग्राहिता अवर्णनीय है। इनका यश देश-देशान्तरों में फैला हुआ है। यह बात सभी जानते हैं कि चाहे सुमेरु पर्व्वत चलायमान हो जाय, सूर्य्य शीतलता ग्रहण कर लें और चन्द्रमा से अग्नि के कण निकलने लगें; किन्तु सेठ सुदर्शन शील-व्रत से विचलित नहीं हो सकते। जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा शोभायमान होता है, उसी प्रकार चम्पानगर में सेठ सुदर्शन। यदि सेठ के पूर्व्व संचित कर्मों का उदय हुआ हो तो हमें खबर नहीं, ज्ञानी भगवान् ही जानें, किन्तु सेठ निष्कलंक, विवेकशील और ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन करने में शिरोमणि हैं"।

इस प्रकार नगर निवासियों ने सेठ का गुण-गान करते हुए राजा को विश्वास दिलाया कि, महाराज! हम प्रजा की जमानत पर आप इन्हें रिहा कर दीजिये। राजाओं में श्रेष्ठ, हे नरपाल! अपनी गरीब प्रजा की पुकार पर ध्यान दीजिये और सेठ सुदर्शन को काल के गाल से मुक्त कीजिये। आप सब प्रकार से समर्थ और शक्तिमान् हैं, कहा है कि:—

गंडस्थलेषु मदवारिषु लौल्यलुब्ध—

मत्तभ्रमद्भ्रमर पादतलाहतोपि।

कोपं न गच्छति नितान्त बलोऽपि नागः

स्वल्पे बले न बलवान्परिकोपमेति॥

अर्थात्—मद के जल से तलबतल गंडस्थल पर सुगन्धि से आये हुए उग्र भ्रमरों से पीड़ित भी प्रचण्ड शक्ति का धारक हाथी जरा भी कोप नहीं करता। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि बलवान् पुरुष निर्बलों पर क्रोध नहीं करते। हे कृपानाथ! मरे को क्या मारियेगा? देखिये आप के राज्य में सेठ जैसा नर-रत्न होना कठिन है। अतः बार २ यही निवेदन है कि आप इन्हें अभय कर प्राण-दान दीजिये।

राजा ने किसी की न सुनी।

प्रजा की यह विनम्र प्रार्थना भी राजा की क्रोधाग्नि में घृत का कार्य्य कर गयी— नकटे को दर्पण दिखाने की भांति उल्टा ही

परिणाम हुआ। उन्मत्त मनुष्य से कहा गया हितकर और प्रिय वाक्य जैसे व्यर्थ जाता है, क्रोध से क्षुब्ध हुए नरनाथ से की हुई प्रार्थनायें भी उसी प्रकार निष्फल हुईं। राजा सरोष होकर बोले:—

क्षमा नहीं है खल साथ श्रेयसी,
महान् लम्पट नर, दण्ड योग्य है।
कुकर्म-कारी-नरका उबारना,
सुकर्मियों को करता विपन्न है॥

यह दुष्ट क्षमाके योग्य नहीं है, इसे अवश्य दण्ड दिया जायगा। तुम लोग बावले तो नहीं हो गये यह सेठ पक्का चोर है। भला महल में पकड़े हुए चोरके सम्बन्ध में अविश्वास कैसे किया जा सकता है। तुमलोग पानी बिलोकर मक्खन निकालने की भाँति असम्भव कार्य्य के करने की चेष्टा करते हो—अन्यायी को निष्कलङ्क बनाना चाहते हो। जावो, चले जावो, नहीं तो सभों की खबर ली जायगी। बेचारी प्रजा अपनासा मुंह लेकर पीछे लौट आयी और मनहीमन सोचने लगी कि देखो प्रजाके सच्चे परामर्श से राजाके काम बनते हैं किन्तु जैसे दुर्विनीत और मद-मत्त पुरुष के पास सम्पदायें अधिक काल तक नहीं ठहर सकती वैसे ही राजा की क्रोधाचरण बुद्धि पर हम लोगों की युक्त-युक्ति और मंगलकारी प्रार्थनायें भी न ठहर सकीं। क्रोध मनुष्य का बड़ा भारी शत्रु है, यह अपने ही शरीर तथा शरीरस्थ इन्द्रियों को

भी संतप्त किये बिना नहीं रहता। इस प्रकार से सोचती-बिसूरती प्रजा निरुपाय हो अपने घरको लौट आयी।

सेठको शूली देनेके लिये ले जाना।

राजाके आज्ञानुसार सेठ की मुस्कें चढ़ा, हाथों में हथकड़ी पहना दी गयीं। और वे कड़े बन्धन से भलीभांति जकड़ दिये गये। राजदूत सिरके केश पकड़ कर, राजपथ से प्राणदण्ड देनेके लिए ले चले। मार्ग में कुभेष और कुभांति से सेठ को जाते हुए देख कर ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसका हृदय विदीर्ण न हो जाता हो। जो देखता, वही सेठ का गुण-गान करता और राजा की अविवेकता, न्याय विहीनता तथा दुर्व्यवहार पर लानत मलामत करता था। दीवानों के व्यंग-वचन-वाण प्रजा के हृदय को छेद रहे थे; किन्तु वह जानती थी कि "खूंटे के बल बछड़ा नाचता है" यदि राजा ही ऐसी आज्ञा न देते तो यह लोग "छोटे मुंह बड़ी बात" कैसे बोलते। सेठ के दो दिन निराहार रहनेवाली वेदना ही ;प्रजा के लिये असह्य हो रही थी, तिस पर भी राजदूतों की निठुरता "जले पर नमक छिड़कती थी"।

मनोरमा का विलाप और प्रण।

बन्धन से जकड़े हुए सेठ ज्यों ही अपने गृह के निकट आये, त्यों ही मार मार के भयानक तुमुल रव ने मनोरमा को द्वार पर ला खड़ी कर दिया। सेठ सुदर्शन की ऐसी बुरी दशा देख मनोरमा ज्ञानशून्य हो, कटे हुए कदलि खम्भ की भांति धराशायी हो

गयी। वह नाना प्रकार से विलाप करती हुई हाथ मलमल कर सिर धुनने लगी। सेठ के हाथों में हथकड़ी पड़ी हुई देख कर दुःखिनी मनोरमा के दोनों नेत्रों से आंसुओं की झड़ी बन्ध गयी। वह बिलखि कर कहने लगी कि हाय! न जाने मेरे प्राणपति, जीवनाधार, त्रिलोकी नाथ को यह दुःख कैसे हुआ। यद्यपि मनोरमा को यह विश्वास था कि मेरे पति शुद्ध ब्रह्मचारी हैं— परस्त्री को स्वप्न में भी नहीं देख सकते—इनके सम्बन्ध की यह फैली हुई चर्चा निर्मूल और सत्यता से परे है तथापि दुःख से विह्वल हो उसने सेठ से पूछा कि स्वामिन् आज यह कैसा विघ्न उपस्थित हुआ है। इस कठिन वेदना के आविर्भाव का वृत्तान्त कृपा कर मुझ से कहिये। सेठ ने कहा हे प्रिये! पूर्व जन्म में मैंने अत्यन्त पाप कर्म किये थे उन्हीं का उदय हुआ है। कर्मों को बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता, अतः इनके भोगने में आना-कानी करनी उचित नहीं। देखो इस सम्बन्ध में तुम किसी को दोष न देना तथा किसी से रोष भी न करना, क्योंकि:—

रोग शोक परीताप बन्धनव्यसनानि च ।
आत्मापराध वृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ॥

अर्थात्—रोग, शोक, पछतावा, बन्धन और आपत्ति ये देह धारियों के लिये अपने अपराध रूपी वृक्ष के फल हैं। अतएव तुम शोक न करो, मैं सकुशल आकर यह सम्पूर्ण आख्यायिका तुम को सुनाऊंगा। सेठ के ऐसे औदार्य्य, गाम्भीर्य्य और अर्थ-

भी संतप्त किये विना नहीं रहता। इस प्रकार से सोचती-विसूरती प्रजा निरुपाय हो अपने घरको लौट आयी।

सेठको शूली देनेके लिये ले जाना।

राजाके आज्ञानुसार सेठ की मुश्कें चढ़ा, हाथों में हथकड़ी पहना दी गयीं। और वे कड़े वन्धन से भलीभांति जकड़ दिये गये। राजदूत सिरके केश पकड़ कर, राजपथ से प्राणदण्ड देनेके लिए ले चले। मार्ग में कुभेष और कुभांति से सेठ को जाते हुए देख कर ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसका हृदय विदीर्ण न हो जाता हो। जो देखता, वही सेठ का गुण-गान करता और राजा की अविवेकता, न्याय विहीनता तथा दुर्व्यवहार पर नालत मलामत करता था। दीवानों के व्यंग-वचन-वाण प्रजा के हृदय को छेद रहे थे; किन्तु वह जानती थी कि "खूंटे के वल बछड़ा नाचता है" यदि राजा ही ऐसी आज्ञा न देते तो यह लोग "छोटे मुंह वड़ी वात" कैसे वोलते। सेठ के दो दिन निराहार रहनेवाली वेदना ही प्रजा के लिये असह्य हो रही थी, तिस पर भी राजदूतों की निठुरता "जले पर नमक छिड़कती थी"।

मनोरमा का विलाप और प्रण।

वन्धन से जकड़े हुए सेठ ज्यों ही अपने गृह के निकट आये, त्यों ही मार मार के भयानक तुमुल रव ने मनोरमा को द्वार पर ला खड़ी कर दिया। सेठ सुदर्शन की ऐसी बुरी दशा देख मनोरमा ज्ञानशून्य हो, कटे हुए कदलि खम्भ की भांति धराशायी हो

गयी। वह नाना प्रकार से विलाप करती हुई हाथ मलमल कर सिर धुनने लगी। सेठ के हाथों में हथकड़ी पड़ी हुई देख कर दुःखिनी मनोरमा के दोनों नेत्रों से आंसुओं की झड़ी बन्ध गयी। वह बिलखि कर कहने लगी कि हाय! न जाने मेरे प्राणपति, जीवनाधार, त्रिलोकी नाथ को यह दुःख कैसे हुआ। यद्यपि मनोरमा को यह विश्वास था कि मेरे पति शुद्ध ब्रह्मचारी हैं—परस्त्री को स्वप्न में भी नहीं देख सकते—इनके सम्बन्ध को यह फैली हुई चर्चा निर्मूल और सत्यता से परे है तथापि दुःख से विह्वल हो उसने सेठ से पूछा कि स्वामिन् आज यह कैसा विघ्न उपस्थित हुआ है। इस कठिन वेदना के आविर्भाव का वृत्तान्त कृपा कर मुझ से कहिये। सेठ ने कहा हे प्रिये! पूर्व जन्म में मैंने अत्यन्त पाप कर्म किये थे उन्ही का उदय हुआ है। कर्मों को बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता, अतः इनके भोगने में आना-कानी करनी उचित नहीं। देखो इस सम्बन्ध में तुम किसी को दोष न देना तथा किसी से रोष भी न करना, क्योंकिः—

रोग शोक परीताप बन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराध वृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्॥

अर्थात्—रोग, शोक, पछतावा, बन्धन और आपत्ति ये देह धारियों के लिये अपने अपराध रूपी वृक्ष के फल हैं। अतएव तुम शोक न करो, मैं सकुशल आकर यह सम्पूर्ण आख्यायिका तुम को सुनाऊंगा। सेठ के ऐसे औदार्य्य, गाम्भीर्य्य और अर्थ-

इसकी कृपा कोप से बढ कर विषयी को हो जाती है,
उसकी मति चपला चपला हो इन्नग से खो जाती है
धर्म्म-कर्म को लात मार कर जो जन इसे झुकावें शीश
तुरत कूद उस पर चढता यह नीच-तमीचर-तुल्य रतीश
जिस पर चढा काम यह उस पर राहु दशा भी चढती
नींद, भूख उसकी घट जाती, चिन्ता, पीड़ा बढती है
पीत बदन दुर्बल हो कर वह, इस से दैन्य दिखाता है,
या हताश होकर अशरण सा, अपनी मृत्यु मनाता है

आपने ऐसे काम पर भी विजय प्राप्त की है। अभया रा के लाख प्रयत्न करने और झूठा कलंक देने पर भी आप निश्चलम हो शील-व्रत पर डटे रहे। आप धन्य हैं। आप के शील-व्र के प्रताप से ही आज हम लोग झूठे कलङ्क को मोचन करने लिये यहां आये हैं।

शूली का सिंहासन।

इस प्रकार देवताओं ने सेठ का गुणानुवाद गाते हुए उन सान्त्वना प्रदान की। उन्होंने शूली का सिंहासन बना, सुदर्शन से को उस पर बिठा कर, ऊंचा उठा दिया। मणि जटित सुवर्ण सिंहासन के चारो पायों में मोतियों की झालर झूल रही थी बड़े २ मोतियों की मालायें बीच में लटक रही थीं, जिन में हीरव





१—कहां मैं सुदर्शन सेठ और कहां प्राणनाशिनी शूली के सन्निकट आकर उपस्थित हुआ हूं। कर्मों के प्रबल आवेग का प्रत्याख्यान कठिन है।

२—उन्होंने शूली का सिंहासन बना, सेठ सुदर्शन को उसपर बिठा कर, ऊंचा उठा दिया।

[पृष्ठ—७५ और ८०

हार की छटा निराली थी। सिंहासन का शिखर शिरोमणि गगनांगन का दीपक बन कर मन को मोहित कर रहा था। ऐसे देव-निर्मित रत्न-जटित सिंहासन पर आसीन होते ही, देवताओं ने सेठ सुदर्शन को कान्तिमय बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया और शूली देने के अभिप्राय से निकटावस्थित सेवकों को मार भगाया। राजदूतों ने उत्पीड़ित हो, राजा के समीप आ सेठ की समस्त बातें ज्यों की त्यों कह सुनायी।

राज सेना का धावा।

यह समाचार पा कर राजा का क्रोध और भी बढ़ गया, उन्हों ने बिना उसका भेद भाव जाने ही—क्रोध के वशीभूत हो—सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्र चतुरंगिनी सेना तय्यार करो। राजा तत्काल ही गजारोही हो, चतुरंगिनी सेना साथ ले, बड़े २ शूर सामन्तों को आगे कर कूच का डंका बजा कर चले। महा घनघोर शब्द करती हुई सेना चल पड़ी और बन्दीजनों ने जयजय-कार के तार बान्ध दिये। सेना के विकट वीरों का सिंहनाद और जयजयकार मिश्रित घोर रव ने चम्पानगर निवासी नर-नारियों के हृदय में एक नवीन कौतूहल मचा दिया। सुकुमारियां झरोखों से झांकने लगीं; कायरों का कलेजा कांपने लगा और बालकों के अम्लान वदन कुम्हला गये। उस समय सभी के चित्त चिन्तित हो उठे कि हाय! यह कैसा उपद्रव होने लगा।

नगर के बाहर जा, दूर से ही राजा ने देवताओं की सेना

देखी और मन में विचार किया कि यह सेठ का ही कुछ फितूर है, इसी ने माया-जाल से यह सब रचना रची है, अतः क्षण-मात्र में सभी को मार कर चकनाचूर कर डालूंगा। यह सोच राजा सेठ की सेना की ओर द्रुतगामी हुए। दोनों दलों के सम्मुख होते ही एक महा संग्राम का सामान जुट गया। एक ओर शील सहायी देवता और दूसरी ओर अभयापति।

देवता और राजसेना का संग्राम।

राजसेना के शरासनों के प्रत्यञ्चाओं की टङ्कार और ढालों की खड़-खड़ाहट की ध्वनि क्रमशः बढ़ने लगी। बाण विद्या के पारगामी राजवीरों ने बाण बरसाना आरम्भ कर दिया और योद्धाओं के प्रकाण्ड धनुषों से सनसनाते हुए बिजली के समान शर छूटने लगे। बड़े वेग से छोड़े जाने के कारण उन शरों से भयानक शब्द होने लगा। अन्यत्र जाने की इच्छा रखनेवाले पक्षियों के समूह जैसे किसी बहुत बड़े वन से चारों तरफ निकल पड़ते हैं वैसे ही राजसेना के वीरों के शरासनों से निकले हुए सहस्रों शर चारों तरफ से उड़ उड़ कर सुदर्शन सेठ की ओर आने लगे। राजा अपनी रण-निपुणता दिखलाते हुए भीषण संग्राम करने लगे। देवताओं ने राजा के इस विकट संग्राम को देख कर मन में सोचा कि यह व्यर्थ ही लड़ रहा है। अभयाप्रद झूठे कलङ्क की कालिमा मिटाने के लिये ही हमलोग यहां आये हैं, सेठ की सहायता करना ही हम लोगों का कर्त्तव्य है। राजा

शील-शिरोमणि सुदर्शन सेठ के गुणों से अनभिज्ञ है, भील की भांति यह चन्द्रकान्त मणि का मूल्य नहीं जान सकता। अतएव इसे रण-नैपुण्य का कुछ चमत्कार दिखाना चाहिये। देवताओं ने एक ऐसा मन्त्र पढ़ा—ऐसी विद्या चलायी—कि समस्त राज-सेना मूर्छित हो, धराशायी हो गयी। यह दशा देख कर राजा को बहुत परिताप हुआ और वे तेजहीन से हो गये, किन्तु खड़े रहे। उन्हें खड़ा देख कर एक देवता ने उनका पीछा किया और वह भगे। देवता ने पुकारा कि, अरे तू भाग कर कहां जायगा, स्वर्ग-नरक कहीं भी तुझे आश्रय नहीं मिल सकता। हां यदि तू सेठ सुदर्शन की शरण में जा तो भले ही रक्षा हो जाय, नहीं तो तुझे मार कर चकना-चूर कर डालूंगा।

राजा सेठ की शरण आये।

देवता के मुख से इस प्रकार की बात सुन, राजा सेठ के सिंहासन के पास आ, नीचे बैठ, लम्बी सांसें भरने लगे। फिर वे विनम्र भाव से कर जोरि इस प्रकार प्रार्थना करने लगे:—"हे ज्ञानागार, ब्रह्मचारी, सेठ सुदर्शन आप बड़े ही सौम्य और शान्त पुरुष हैं। इसके पूर्व मैंने कभी भी आपकी किसी प्रकार की निन्दा नहीं सुनी थी। अभया रानी ने यह सब झूंठा जाल फैलाया और मैंने भी उसी के फन्दे में पड़, क्रोध के वशीभूत हो, बिना कुछ सोचे विचारे आप जैसे महान् सत्पुरुष को कठिन दुःख दिया। नगर की सारी प्रजा ने आकर विलाप किया किन्तु मैंने उसकी

आर्त्तनाद पर भी ध्यान न दिया। आपके इस सुदृढ़ शील-व्रत पर सभी का अटल विश्वास है, पर मैंने उसे न मान कर आप को अत्यन्त क्लेश पहुंचाया। मुझ से यह बड़ा भारी अपराध हुआ है, अतः अब मैं नमित मस्तक हो, अपने इस गुरुतर पाप का प्रायश्चित्त चाहता हूं—मेरा अपराध क्षमा करो। आप पुरुष शिरोमणि, नर-रत्न हो, आपके शान्त मन को देवता भी चञ्चल नहीं बना सकते। अभया बड़ी पापिनी और दुष्टा है जिसने आपको यह झूठा कलङ्क लगाया। अब आप मेरी लज्जा रखो, मैं आपके इस उपकार को जावज्जीवन न भूलूंगा। त्राहिमाम्! रक्षा करो!! रक्षा करो" !!!

राजा के ऐसे वचन सुन सेठ बोले "राजन् आप हमारे शिरधनी, मालिक हैं, किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिये। हमारे पास खड़े हुए जान कर देवता आपको घात न करेंगे, आप निश्चिन्त हो जाइये"। सेठ की ऐसी बात सुन राजा के जान में जान आयी और उन्हें विश्वास हो गया कि सेठ के समीप रहने पर मैं मारा न जाऊंगा, यह मेरी रक्षा करेंगे। शरणागत की रक्षा करना सत्पुरुषों का सहज स्वभाव होता है, अतः सेठ ने राजा को अभय-दान देकर, अपने समीप बिठा लिया।

देवता की फटकार।

राजा को सेठ सुदर्शन के समीप बैठा देख, देवता ने उनपर आमर्ष पूर्ण, कठोर वचन-बाणों का प्रहार करना आरम्भ किया।

"अरे मूढ़! धात्रीवाहन राजा, निर्लज्ज, काली अमावस्या का जना, पापी, अकालही काल के गाल में जाने वाला, क्या तेरी हिये-कपार की फूट गयीं ! तुझे सूझता नहीं है ! तू ने शील-व्रत धारक, महा गुणवान, ऐश्वर्य्यवान, सेठ सुदर्शन को शूली देने की तय्यारी की है और ऐसे सत्पुरुष को कामलोलुप समझ रखा है। तू अभी सेठ के अवगुणों को बता, नहीं तो अपनी खैर न समझ। देख राजाः—

नपरस्या पराधेन परेषां दण्डमाचरेत् ।
आत्मनावगतं कृत्वा बन्धीयात्पूजयेच वा ॥

अर्थात्—किसी के बहकाने से दूसरे को दण्ड न देना चाहिये। मारने और सम्मान करने के पूर्व अपने आप भली-भांति उसकी जानकारी कर लेनी चाहिये। तू ने अपनी स्त्री की बात मान कर सेठ को व्यभिचारी ठहराया और शूली का हुक्म दिया। न्यायी को अन्यायी और अन्यायी को न्यायी समझा। "उल्टा चोर कोतवाल को डांटे" वाली कहावत चरितार्थ कर अपनी दुष्ट भार्य्या के अवगुणों पर ध्यान न दे, सेठ को ही मुल्ज़िम बनाया। इसके पश्चात् धाय जैसे सेठ को महल में लायी और रानी ने यातना पहुंचायी, देवताओं ने उनकी सारी करतूत राजा से कह सुनायी। रानी की सारी राम कहानी सुन, राजा का जी फट गया और दुःखित हो विचार करने लगे कि देखो, रानी ने मुझ से कहा था कि मैंने बड़ी कठिनाई के साथ सेठ से अपना

लाज बचायी है पर वह सब झूठ निकला। इससे मुझे मालूम होता है कि रानी के चाल-चलन में कुछ दाल में काला है

राजा का क्लेश निवारण।

सेठ ने जब देखा कि राजा अत्यन्त लज्जित हो, नमित मुख बैठे हैं और देवता उन्हें खरी-खोटी सुना अपमानित कर रहे हैं, तब देवताओं से बोले कि भाई! इनके प्रति कटु वाक्यों का प्रयोग न करो। रानी मेरी माता और यह राजा मेरे पिता के तुल्य हैं। इन्होंने मेरी भलाई की है। मैं समझता हूं कि रानी ने मेरे साथ कपट कर के—झूठा कलंक लगा के—एक प्रकार से मेरा उपकार ही किया है। रानी के ऐसे व्यवहार ने ही लोगों को मेरे सम्बन्ध का यथार्थ ज्ञान कराया है। अतएव रानी और राजा को किसी प्रकार का क्लेश न दीजिये।

सुदर्शन सेठ की ऐसी वाणी सुन देवता अत्यन्त हर्षित हुए। और मन में विचार करने लगे कि देखो रानी और राजा ने इन्हें अत्यन्त क्लेश पहुंचाया, झूठा कलंक लगाया, नगर में अपने सेवकों द्वारा अपमानितकराया। किन्तु यह उन्हें सम्मानित करते हुए अभय-दान देते हैं। धन्य है वह पुरुष जो बुराई का बदला भलाई से चुकाता है— मार्ग में कांटे बिछाने वाले के लिए फूल बिछाता है। धन्य हैं सुदर्शन सेठ, जिन्हों ने लाख कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपने शील-व्रत को न त्यागा। इन्होंने स्वयम् दुःख सहा, किन्तु दूसरे को सन्ताप न पहुंचाया। इस प्रकार

सेठ का गुणगान करते हुए देवताओं ने राजा की मूर्छित सेना को सचेत कर दिया और ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व की प्रशंसा की। सुदर्शन सेठ की महिमा सुन, नगर निवासी आह्लादित हो उठे और उनके हर्ष का वारापार न रहा। तदनन्तर देव-प्रद रत्नाभरणों से सेठ का अंग- प्रत्यंग प्रच्छन्न होगया। अमृत फेन के समान उनके उज्ज्वल दुकूलों की छटा निराली छिटक रही थी। दोनों भुजाओं में धारण किये हुए वाजूवन्दों से मालूम होता था कि मानो ...ला लक्ष्मी को बांध रखा है। देवताओं ने बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ का महोत्सव किया और अनेकानेक भांति से यश गान के पश्चात् वह जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से चले गये।

राजा द्वारा सेठ का महोत्सव।

देवताओं के चले जाने के पश्चात्, राजा ने सेठ के महोत्सव करने की मन में ठानी और सेवकों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम :लोग अति शीघ्र चम्पानगरी को सजाओ, गगन-स्पर्शी प्रासादों में ध्वजा-पताका उड़ाओ, हर्ष की दुन्दुभी बजाओ और सारे नगर में उच्चस्वर से महोत्सव का मूल कारण कह कर प्रजा को प्रसन्न करो। सेठ की सुभार्य्या मनोरमा से इसकी बधाई दो और चतुरंगिनी सेना तय्यार कर, पट हस्ती को सजा कर यहां लावो"। सेवकों ने राजाज्ञा का अविलम्ब पालन कर राजा को जनाया। राजा ने सेठ से विनम्र हो प्रार्थना की "आप का महोत्सव करने के लिए मेरा मन लालायित हो रहा है। मैंने

लाज बचायी है पर वह सब झूठ निकला। इससे मुझे मालूम होता है कि रानी के चाल-चलन में कुछ दाल में काला है

राजा का क्लेश निवारण।

सेठ ने जब देखा कि राजा अत्यन्त लज्जित हो, नमित मुख बैठे हैं और देवता उन्हें खरी-खोटी सुना अपमानित कर रहे हैं, तब देवताओं से बोले कि भाई! इनके प्रति कटु वाक्यों का प्रयोग न करो। रानी मेरी माता और यह राजा मेरे पिता के तुल्य हैं। इन्होंने मेरी भलाई की है। मैं समझता हूं कि रानी ने मेरे साथ कपट कर के—झूठा कलंक लगा के—एक प्रकार से मेरा उपकार ही किया है। रानी के ऐसे व्यवहार ने ही लोगों को मेरे सम्बन्ध का यथार्थ ज्ञान कराया है। अतएव रानी और राजा को किसी प्रकार का क्लेश न दीजिये।

सुदर्शन सेठ की ऐसी वाणी सुन देवता अत्यन्त हर्षित हुए। और मन में विचार करने लगे कि देखो रानी और राजा ने इन्हें अत्यन्त क्लेश पहुंचाया, झूंठा कलंक लगाया, नगर में अपने सेवकों द्वारा अपमानित कराया; किन्तु यह उन्हें सम्मानित करते हुए अभय-दान देते हैं। धन्य है वह पुरुष जो बुराई का बदला भलाई से चुकाता है— मार्ग में कांटे बिछाने वाले के लिए फूल बिछाता है। धन्य है सुदर्शन सेठ, जिन्हों ने लाख कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपने शील-व्रत को न त्यागा। इन्होंने स्वयम् दुःख सहा, किन्तु दूसरे को सन्ताप न पहुंचाया। इस प्रकार

सेठ का गुणगान करते हुए देवताओं ने राजा की मूर्छित सेना को सचेत कर दिया और ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व की प्रशंसा की। सुदर्शन सेठ की महिमा सुन, नगर निवासी आह्लादित हो उठे और उनके हर्ष का वारापार न रहा। तदनन्तर देव-प्रद रत्नाभरणों से सेठ का अंग- प्रत्यंग प्रच्छन्न होगया। अमृत फेन के समान उनके उज्ज्वल दुकूलों की छटा निराली छिटक रही थी। दोनों भुजाओं में धारण किये हुए बाजूबन्दों से मालूम होता था कि मानो चञ्चला लक्ष्मी को बांध रखा है। देवताओं ने बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ का महोत्सव किया और अनेकानेक भांति से यश गान के पश्चात् वह जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से चले गये।

राजा द्वारा सेठ का महोत्सव।

देवताओं के चले जाने के पश्चात्, राजा ने सेठ के महोत्सव करने की मन में ठानी और सेवकों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम लोग अति शीघ्र चम्पानगरी को सजाओ, गगन-स्पर्शी प्रासादों में ध्वजा-पताका उड़ाओ, हर्ष की दुन्दुभी बजाओ और सारे नगर में उच्चस्वर से महोत्सव का मूल कारण कह कर प्रजा को प्रसन्न करो। सेठ की सुभार्य्या मनोरमा से इसकी बधाई दो और चतुरंगिनी सेना तय्यार कर, पट हस्ती को सजा कर यहां लावो"। सेवकों ने राजाज्ञा का अविलम्ब पालन कर राजा को जनाया। राजा ने सेठ से विनम्र हो प्रार्थना की "आप का महोत्सव करने के लिए मेरा मन लालायित हो रहा है। मैंने

आप के गुणों को न पहचान, आप का निरादर किया और बुरा समझकर आपसे अप्रीति की। मेरे द्वारा की गयीं ऐसी बड़ी भूलें अब भी मेरे हृदय को संतप्त कर रही हैं। मैं अपनी करनी पर पश्चात्ताप करता हूं और आप का यश गाकर अपराध की मार्जना चाहता हूं। इस चम्पानगरी में मेरा राज्याधिकार है, आज से मैं इसका शासन-भार आपको सौंपता हूं। आप नियमानुसार राज-काज संभालिये, मैं आज्ञाकारी बन कर रहूंगा और आप का दिया हुआ अन्न-वस्त्र ग्रहण करूंगा। राज्य में आप जैसा परिवर्तन चाहोगे वैसा ही होगा और आप की आज्ञा सभी को मान्य होगी।

राजा की ऐसी बात सुन सुदर्शन सेठ ने कहा "राजन् आप हमारे पिता तुल्य हो, यदि आप ऐसा नहीं कहोगे तो कौन कहेगा? किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है, कृपया इसे सुन लीजिये, रानी के द्वारा जब मुझे इस विपत्ति का सामना करना पड़ा—मैं इस अभियोग का अभियुक्त बनाया गया—तब मैंने हृदय में यह अभिग्रह धारण किया था—मन में प्रतिज्ञा की थी—कि यदि इस यातना से सकुशल मुक्त हो जाऊंगा तो संयम भार ग्रहण करूंगा। मैंने संसार की निस्सारता जानली है, अतः आप कृपा कर दें तो मैं कुटुम्ब-परिवार को त्याग कर अपना बेड़ा पार कर दूं। अभया रानी और पण्डिता धाय के प्रति मेरे द्वारा यदि कोई अपकार हुआ हो---उन्हे राग-द्वेष हुआ हो—तो उसके लिये मैं बारम्बार क्षमा प्रार्थी हूं।" राजा

ने कहा कि "दुष्ट अभया रानी और पापिनी पण्डिता धाय ने आपकी उज्ज्वल कीर्त्ति पर कलङ्क का धब्बा लगाना चाहा, इन्द्रिय निग्रह के दिवाकर को कुशील की मुट्ठी भर धूल से धूसर करना चाहा, अतः इन्हे अवश्य प्राण दण्ड दिया जायगा"। सुदर्शन सेठ ने कहा "महाराज! आप मन में विचार कर देखें कि अभया रानी और पण्डिताधाय के ही कर्त्तव्य ने मुझे आज यश-भाजन बनाया है। यदि वे मुझे इस प्रकार का कष्ट न देतीं, झूठा कलङ्क न लगातीं, तो आप मेरे सम्बन्ध की यथार्थ बातें शायद न जान सकते। देवताओं का आगमन यहां न होता और न मेरी इतनी कीर्त्ति ही ही फैलती। अत एव उन्होंने मेरा अपकार नही बल्कि उपकार ही किया है। एतदर्थ आप से नम्र निवेदन है कि आप उन्हे किसी प्रकार का क्लेश न दीजियेगा। सेठ के ऐसे मानसिक विकार रहित विचारों को देख कर राजा फूलेअङ्ग न समाये और कहने लगे कि बुराई का बदला भलाई से चुकाने वाले आप सरीखे सत्पुरुष इस जगत में विरले ही हैं।

सेठका अपने घर आना।

सुदर्शन सेठ की यह अभिलाषा हुई कि घर चल कर कुटुम्ब-परिवार से मिलूं और वियोग- संतप्त हितैषियों को सुख- शान्ति प्रदान करूं। राजा ने सेठ की ऐसी इच्छा देख, हाथी पर मणि जटित कंचन हौदा रखवाया और चतुरंगिनी सेना तय्यार की। पट हस्ती पर सुदर्शन सेठ को बिठाकर, आप उनके पीछे बैठ,

की दुन्दुभी बज रही है, नौवत झड़ रही है और नगर नर-नारियों का आवागमन हो रहा है। राजा भी स्वयम् द्वार पर बैठे हैं अतः अब तुम निश्चिन्त हो जावो और यदि तुमने मेरा अभिग्रह लिया हो तो अपना ध्यान पूरा करो, तुम्हारा नेम पूरा हुआ"। इतनी बात सुनते ही उसने अपना ध्यान पूरा किया और सानन्द सेठ के चरणों में अपने को समर्पण कर उनका गुण-गान करने लगी। उस समय उसके आनन्द का वारा-पार न रहा। जैसे किसी कृपण की खोयी हुई लक्ष्मी आ जाय, अन्धे को आंख मिल जाय वैसे ही आज मनोरमा का मीन-मन अपने प्राणनाथ, पति-देवता के शरण-सरोवर में आ मिला। मनोरमा के अंग प्रेम से पुलकायमान और नेत्र जल से पूर्ण हो गये। हृदय के अन्तस्तल में सलिला के समान छिपा हुआ प्रगाढ़ प्रेम उमड़ पड़ा और उसने सेठ को हृदय से लगा लिया। फिर सेठ को मौत के मुंह से बचा हुआ जान, नया जन्म मान, वह मोह मन्दिर के प्राङ्गण में विक्षिप्त सी हो गयी। सेठ अपनी मंगलमयी प्रेम दृष्टि से सौन्दर्य-सम्पत्ति की अधिकारिणी मनोरमा की ओर देख कर बोले, "हे विनीता, पतिव्रत-प्रवीणा, तु धन्य है और मुझे तेरे इस अटल अनुराग पर बड़ा हर्ष है"। इस भांति सेठ सुदर्शन ने अपनी अर्द्धाङ्गिनी मनोरमा का दुःख विमोचन कर, पुत्र-वधू तथा समस्त परिवार को हर्षित किया और फिर राजा के पास आये। राजा ने विलम्ब होने का कारण पूछा तो सेठ ने मनोरमा के अभिग्रह की बात सुनायी। उसके कायोत्सर्ग का वृत्तान्त सुन, राजा

सुदर्शना-चरित्र



अब तुम निश्चिन्त हो जाओ और यदि तुमने मेरा अभिग्रह लिया हो तो अपना ध्यान पूरा करो, तुम्हारा नेम पूरा हुआ। [पृष्ट—६२]

बड़े आनन्दित हुए और मन में सोचने लगे कि देखो सेठ सुदर्शन के घर कैसी सुलक्षणा स्त्री है। धर्म-ध्यान और पति-भक्ति में इतनी पक्की है कि पति वियोग में उसने आहार-पानी का त्याग कर दिया। नारी नामको सार्थक बनानेवाली ऐसी ललनाओं को धन्य है। धन्य है वह स्त्री जो पातिव्रत धर्म की मर्य्यादा को सुदृढ़ करती और पति को देवतुल्य मानती है। एक मेरी स्त्री है जिसके कथनानुसार यदि मैं सेठ को शूली देने में सफल मनोरथ हो जाता, तो सेठ की सुशीला स्त्री भी प्राण त्याग देती और मैं दो निरापराधी मनुष्यों का घातक बनता। देवताओं ने सेठ की प्राण रक्षा के साथ २ मुझे भी पातकी होने से बचाया। अस्तु! स्त्री-पुरुष का यह उपयुक्त संयोग मिला है और यही कारण है कि इनकी यश-पताका चारों ओर फहरा रही है"। फिर राजाने सेठ को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण तथा हीरा-माणक भेंट दे, चरणों गिर कर, क्षमा चाही। सेठ ने नम्रतापूर्व्वक अपनी दीनता दिखाते हुए राजा से भोजन करने के लिये प्रार्थना की। राजा पुलकित हृदय हो, सेठ के घर विविध भांति के षटरस भोजनों से सन्तुष्ट हो, सभी को दान-सम्मान देकर अपने घर आये और राज-काज देखने लगे।

राजा के चले जाने के पश्चात् मनोरमा ने अपना व्रत पूरा हुआ जान, शुद्ध-साधु को आहार-पानी दे, पति को भोजन कराय, पारणा किया। सभी हितैषी तथा परिजन केलोग बड़ी रुचि के साथ भोजन कर तृप्त हुए। तदनन्तर नगर निवासियों को

भोजन-वस्त्र द्वारा सन्तुष्ट किया गया। चम्पानगर में घर घर बधावा बजते और मङ्गलाचार होते थे। चारों ओर से मानों ऋद्धि-सिद्ध सम्पत्ति की सरितायें उमड़ रही थीं। उस समय वहां का आनन्द अवर्णनीय था।



छठा अध्याय

साधु-दर्शन और सदोपदेश।

सेठने संयम लेने की ठानी।

शील-व्रत के प्रभाव से सभी विघ्नों का विनाश हो गया और सुख-शान्ति की स्थापना हुई। इन्द्रिय-निग्रह के प्रबल प्रताप से सुदर्शन सेठ जब कामदेव की विश्वविद्यालय में, कामिनी परीक्षक के हाथ से, द्वितीय बार भी परीक्षोत्तीर्ण हुए तब इनके ज्ञान का और भी विकाश हुआ। सेठ सुदर्शन ने सोचा कि संयम द्वारा कर्म-क्षय किये बिना इस जीव का कल्यान नहीं और न यह जन्म-मरण के बन्धन से ही मुक्त हो सकता है। संसार में रह कर कभी नरक, कभी तिर्यञ्च, और कभी देवता के रूप में भ्रमण करना पड़ेगा, कभी प्यारे का संयोग, कभी वियोग, कभी सुख, कभी दुःख, कभी राग और कभी द्वेषादि कर्मों के चक्कर में तेली

के बैल की भांति जुता रहूंगा। अतएव श्रीजिनेश्वर भगवान् के बताये हुए धर्म में अनुरक्त हो कर्मों के बन्धन को क्रमशः शिथिल करूं, क्योंकि इस कर्मपाश को काट कर मुक्त होना ही जीव का एक मात्र कल्याणकर कर्त्तव्य है। ऐसा मानव शरीर पाकर जिसने सच्चे धर्म, देव, गुरु को पहिचान कर, उसमें श्रद्धा न की उसने अपना जीवन व्यर्थ ही खोया। अतः अब मैं गृह त्यागी बन, पंच महाव्रत को पाल, बारह भेदों से तपस्या करते हुए इस रहस्यमय जगत के जालों से निकल कर, संयम के उत्तुङ्ग पर्व्वत पर चढ़ चलूं। इस प्रकार शिव-पथ के आनन्द का अनुभव करते हुए, सुदर्शन सेठ के हृदयोद्यान में वैराग्य का पुष्प-प्रस्फुटित हो गया और उन्होंने मन में ठान लिया कि अब जब साधु मुनिराज यहां पधारेंगे, संसार को छोड़ कर संयम ग्रहण करूंगा। उसका धर्म पर ऐसा दृढ़ प्रेम—वैराग्य पर अटल अनुराग—शुक्ल पक्षके चन्द्रमा की भांति बढ़ता ही गया।

साधु-दर्शन।

कुछ कालोपरान्त चार ज्ञान के धनी साधु मुनिराज विचरते हुए, कतिपय साधुओं के संग चम्पानगर में पधारे। बन-रक्षक ने सेठ सुदर्शन को यह सुसम्वाद आकर सुनाया और वे बड़े प्रसन्न हुए। सेठ प्रफुल्ल वदन हो, मन में सोचने लगे कि, आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, अब शीघ्र चल कर साधु-दर्शन का लाभ उठाऊं और अपना मनोरथ सिद्ध कर जीवन को सफल बनाऊं। इस प्रकार

विचार कर सेठ सपत्नीक, बड़े समारोह तथा विधान के साथ, दर्शनार्थ, साधु मुनिराज के निकट आये।

साधु-मुनिराज के निकट आकर नमस्कार-वन्दना के पश्चात् श्रोताओं में बैठ कर धर्म कथा श्रवण करने लगे। श्री पुज्य मुनिराज ने प्रेम के साथ बड़े चाव से साधु-श्रावकों को इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया:—हे भव्य प्राणियो,

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

अर्थात्—धर्म उत्कृष्ट मंगल का रूप है। इसके अहिंसा, संयम और तप इत्यादि अनेक भेद हैं। देवता भी इसे नमस्कार करते हैं। अतः धर्म की धारणा प्रत्येक प्राणी को करनी चाहिये।

देखो जीवकी पांच गति इस प्रकार होती हैं—जो पाणी पञ्चेन्द्रियजीवोंका हनन कर, मद्य-मांस का भक्षण करते हुए आमोद-प्रमोद करता है, वह जीवकी पहली गति नरक में जाता है। जो प्राणी हिंसक, असत्यवादी, व्यभिचारी, और झूठी बात लिखता तथा झूठा दोषारोपण करता है वह दूसरी तिर्यंच गति में जाता है। जो प्राणी धर्म के कारण हिंसा कर प्रसन्न होता है, दूसरों पर झूठा कलंक लगाता तथा दम्भी, कपटी, और पाखण्डी होता है, वह नरक निगोद में जाता है। जो प्राणी विनीत, नम्र, सज्जन, अहंकार रहित, सत्यवादी और करुणा पूर्ण होता है, वह तीसरी गति मनुष्य योनि में जन्म लेता है। मनुष्य जन्म पाकर

स्थान में ध्यान मग्न साधु को, वस्त्र विहीन बैठा हुआ देख, तुम ने मन में विचार किया कि ऐसे शीतकाल में इस बेचारे की रात कैसे कटेगी। इस प्रकार हृदय में दया भाव ला, तुम घर से लौट कर, आग और ईंधन के साथ उसी जंगल में आये। साधु के चारों ओर आगजला कर तुमने उन्हे सारी रात तपाया। प्रातः-काल होते ही जब साधु का ध्यान पूरा हुआ तो उन्होंने तुम्हे वहां बैठा हुआ देखा और मन में विचार किया कि 'यह ग्वाल-बाल जैन धर्म से बिलकुल अनभिज्ञ है, । अतः साधु ने तुम्हे इस प्रकार उप-देश दिया। "देख भाई साधु के निमित्त कोई भी कार्य करना (जिससे किसी जीव को क्लेश पहुंचे) पाप का कार्य्य है"। तुम्हारी अच्छी बुद्धि और सुन्दर प्रकृति को देख कर मुनि ने यह भी कहा कि "किसी जीव को कभी क्लेश न देना और नवकार मंत्र को सदैव जपते रहना एक शुभ कार्य्य है"। उसी समय से तुम्हारा साधु-वचन पर दृढ़ विश्वास तथा नवकार मंत्र पर प्रगाढ़ प्रेम हो गया और तुम सदैव नवकार मंत्र का जाप करते रहे। इस महामंत्र के प्रभाव और अच्छे परिणामों के कारण तुम आयु पूरी कर सेठ ऋषभ दास के घर पैदा हुए, तुम्हारा नाम सुदर्शन रखा गया। यह तुम्हारा चौथा भव है।

कुरङ्गणी नामक भीलनी मर कर राजा के द्वार पर छैली हुई और कर्मानुसार उसने मनुष्य योनि में जन्म पाया। फिर तपादि कर साधु-संगति के प्रभाव से वह मनोरमा स्त्री हुई। इस प्रकार सुदर्शन सेठ और मनोरमा के पिछले भव की कथा सुना

मुनिराज ने नवकार मंत्र की महिमा-वर्णन करना आरम्भ किया।

नवकारकी महिमा।

नवकार मंत्र की महिमा अपार है, जगत में यह एक सार वस्तु है। इससे कर्म कटते, संकट मिटते और क्रमशः निर्वाण पद की भी प्राप्ति होती है। इससे भूत-प्रेत, चोर-चाण्डाल, दैत्य-दानव, किसीका भय नहीं रहता और सभी प्रकार के विघ्न बाधाओं का शमन हो कर शान्ति स्थापित होती है। जे सत् पुरुष अपने हृदय कमल पर इस सर्वोत्तम मंत्र को धारण कर लेते हैं वे सच्चरित्र, संयमी, सत्यवादी होकर क्रमानुसार मोक्ष पद की प्राप्ति करते हैं। चौदह पूर्व के ज्ञानों में नवकार मंत्र सार है। एक समय एक बालक कुछ गोरू चरा रहा था कि अचानक नदी की विकराल बाढ़ आयी, किन्तु बालक ने नवकार मंत्र का ध्यान किया, जिसके प्रभाव से नदी ने बालक को मार्ग दे दिया यानी जल फट कर बीच में रास्ता हो गया। नवकार मंत्र के ही प्रभाव से सेठ की सुकोमला 'श्री मती' नामक पुत्री ने सर्प से अपनी रक्षा की। एक समय राजाने एक तस्कर को शूली का दण्ड दिया, सेठ ने उसे नवकार मंत्र सिखाया और उसके जपके [illegible]भाव से [illegible]लोक में जा कर पैदा हुआ। नवकार मंत्र [illegible] समुद्र में डूबती हुई सेठ की नौका को [illegible] लगा।" इस महामंत्र के महत्त्व का



नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं ।

वचनों को न सम्भाल सकने के कारण मूर्च्छित हो धराशायी हो गयी। कुटम्ब-परिवार, वाले भी यह समाचार पाकर शोक-सागर में निमग्न हो गये; वंश-बेलिके आधारस्तम्भ सेठ के उस वियोग वाक्य ने उन्हे शुष्क बना दिया और सब के सब व्याकुल हो सोचने लगे कि "हाय! सुख में यह दुःख कहां से आया, इस मनोरथ के फलते हुए वृक्ष पर वज्राघात कैसे हुआ? कुछ देर बाद मनोरमा को कुछ ज्ञान हुआ और उसने सोचा कि अब मैं चकोरी, उस चन्द्रानन के देखे बिना कैसे जीऊंगी! बस इतने ही में फिर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय दुर्निवार और दुर्गम मोह के प्रलयकारी वेगने मनोरमा के अविचल चित्तको भी चंचल बना दिया। सुदर्शन सेठ उसे विक्षिप्त देख, मोह जाल में पड़ी हुई जान, इस प्रकार उपदेश देने लगे:—

"देखो इस जीवन धन का काल-चोर सदैव सिर पर खड़ा है, न जाने कब लूट ले जाय। परभव जाते हुए जीव के मार्ग में कंटक होना सच्चे कुटम्बियों और हितैषियों का कार्य्य नहीं है। सांसारिक कार्य्यों में लिप्त रह कर वास्तविक आनन्द का अभिलाषी बालू को पेर कर तेल निकालना चाहता है। तेरा मेरा और मेरा तेरा यह सब कर्मों का ही मायाजाल है। इन्हींके प्रपंच में पड़ कर यह पंचेन्द्रियां भी राव को रंक बना देती हैं। जैसा कि कहा है:—

वारापार नहीं, इसके अवर्णनीय गुणों के वर्णन करनेमें सभी असमर्थ हैं।

साधु-मुनिराज के कंठ से निकले हुए नवकार गुण के स्वरों ने सुदर्शन की प्राण-तंत्री बजा दिया, वे अतिहर्षित हो चरणों में शीस झुका, करबद्ध हो बोले "हे स्वामी नाथ ! जान-बूझ कर अब मैं सांसारिक अनुत्ताप की भीषण ज्वालाओं में दग्ध होना नहीं चाहता। मैं अपने पुत्र को गृहस्थी का भार सौंप कर संयम ग्रहण करने का इच्छुक हूं। मुनिराज ने सेठ के ऐसे भाव पूर्ण शब्दों को सुन कर और उनकी मनोभिलाप को जान कर कहा कि ',ऐसे शुभ कार्य्यों में विलम्ब न करना चाहिए, क्योंकि जो आयु बीती जा रही है फिर हाथ न आवेगी, अतः शुभस्य शीघ्रम्"।

सेठ ने मनोरमा से आज्ञा मांगी।

सुदर्शन सेठ प्रसन्न चित्त हो, बड़े भाव से वन्दना कर, अपने घर आये। उन्होंने कुटम्ब-परिवार, स्वजन-हितैपियोंको भोजन कराया और दान सम्मान से सब को संतुष्ट किया। तदुपरान्त अपने सुयोग्य पुत्र को वस्त्राभूषणों से भूषित कर नियमानुसार पाट पर बिठाया और परिवारवालों के सन्मुख उसे गृह का सम्पूर्ण भार सौंप दिया। फिर अपनी अर्द्धाङ्गिनी मनोरमा से सेठ ने चारित्र ग्रहण करने की आज्ञा मांगी। यह सुनते ही वह अवाक् हो गयी और उसके नेत्रों से वारि-वर्षा होने लगी। स्वामी के ऐसे विरहयुक

बड़ी धूम-धाम के साथ दीक्षा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये।

सेठ के प्रयाण समय बन्दीजनों ने साखोचार और बिरदावली का प्रारम्भ किया। संग में हजारों सेवक नेजा, निशान और ध्वजा, पताका के साथ चले। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी की छटा निराली थी। आगे राजा की चतुरङ्गिनी सेना और उसके पीछे गुलाब नीर छीड़कवाते, चांदी-सोने के फूल बरसाते राजा जा रहे थे, उसके पीछे २ सुदर्शन सेठ की पालकी जाती थी। सिपाही-सामंत और पैदल सैन्या का तांता बन्धा था। कुटम्ब-परिवार और स्नेही-मित्रों के अतिरिक्त नगर के सहस्त्रों नर-नारी उत्सव में सम्मिलित थे। चारों ओर से जय-जयकार की ध्वनि हो रही थी। उस समय सभी की यह लालसा थी कि सुदर्शन सेठ को देख कर नेत्रों का आनन्द लूटें और जन्म को सफल बनावें। दर्शकों की भीड़ इतनी अधिक थी कि जिधर दृष्टि डालिये उधर नर मुंड ही नर मुंड दृष्टि गोचर होते थे। नगर नारियां अपने २ अटा से छवि निरख रही थीं इस प्रकार बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ साधु अवस्थित-वाटिका में पहुंचे। उस समय उनके मुख से ही चर्य्या के आन्तरिक भाव प्रकट हो रहे थे।

सेठ का दीक्षित होना

साधु सभाव वाले सुदर्शन सेठ कुछ



दीक्षा-महोत्सव।

बड़ी धूम-धाम के साथ दीक्षा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये।

सेठ के प्रयाण समय वन्दीजनों ने साखोचार और विरदावली का प्रारम्भ किया। संग में हजारों सेवक नेजा, निशान और ध्वजा, पताका के साथ चले। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी की छटा निराली थी। आगे राजा की चतुरङ्गिनी सेना और उसके पीछे गुलाब नीर छीड़कवाते, चांदी-सोने के फूल वरसाते राजा जा रहे थे, उसके पीछे २ सुदर्शन सेठ की पालकी जाती थी। सिपाही-सामंत और पैदल सैन्या का तांता वन्धा था। कुटम्ब-परिवार और स्नेही-मित्रों के अतिरिक्त नगर के सहस्त्रों नर-नारी उत्सव में सम्मिलित थे। चारों ओर से जय-जयकार की ध्वनि हो रही थी। उस समय सभी की यह लालसा थी कि सुदर्शन सेठ को देख कर नेत्रों का आनन्द लूटें और जन्म को सफल बनावें। दर्शकों की भीड़ इतनी अधिक थी कि जिधर दृष्टि डालिये उधर नर मुंड़ ही नर मुंड़ दृष्टि गोचर होते थे। नगर नारियां अपने २ अटा से छवि निरख रही थीं इस प्रकार बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ साधु अवस्थित-वाटिका में पहुंचे। उस समय उनके मुख से ही चर्य्या के आन्तरिक भाव प्रकट हो रहे थे।

सेठ का दीक्षित होना।

साधु सभाव वाले सुदर्शन सेठ कुछ दूरही से, पालकी छोड़,



दीक्षा-महोत्सव ।

आगे राजा की चतुरङ्गिनी सेना और उसके पीछे गुलाब नीर छिड़कवाते, चांदी-सोने के फूल बरसाते राजा जा रहे थे, उसके पीछे २ सुदर्शन सेठ की पालकी जाती थी ।

[पृष्ठ—१०७]

बड़ी धूम-धाम के साथ दीक्षा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये।

सेठ के प्रयाण समय बन्दीजनों ने सालोचार और विरदावली का प्रारम्भ किया। संग में हजारों सेवक नेजा, निशान और ध्वजा, पताका के साथ चले। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी की छटा निराली थी। आगे राजा की चतुरङ्गिनी सेना और उसके पीछे गुलाब नीर छीड़कवाते, चांदी-सोने के फूल बरसाते राजा जा रहे थे, उसके पीछे २ सुदर्शन सेठ की पालकी जाती थी। सिपाही-सामंत और पैदल सैन्या का तांता बन्धा था। कुटम्ब-परिवार और स्नेही-मित्रों के अतिरिक्त नगर के सहस्त्रों नर-नारी उत्सव में सम्मिलित थे। चारों ओर से जय-जयकार की ध्वनि हो रही थी। उस समय सभी की यह लालसा थी कि सुदर्शन सेठ को देख कर नेत्रों का आनन्द लूटें और जन्म को सफल बनावें। दर्शकों की भीड़ इतनी अधिक थी कि जिधर दृष्टि डालिये उधर नर मुंड ही नर मुंड दृष्टि गोचर होते थे। नगर नारियां अपने २ अटा से छवि निरख रही थीं इस प्रकार बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ साधु अवस्थित-वाटिका में पहुंचे। उस समय उनके मुख से ही चर्या के आन्तरिक भाव प्रकट हो रहे थे।

सेठ का दीक्षित होना।

साधु स्वभाव वाले सुदर्शन सेठ कुछ दूरही से,पालकी छोड़,

साधु को देख कर वह पण्डिता धाय ताड़ गयी कि हो न हो यह वही सुदर्शन सेठ है। अतः उसने शीघ्र जाकर वेश्या से साधु आगमन और कपिला ब्राह्मणी तथा अभया रानी की सारी बातें सुनायी और सुदर्शन के इन्द्रियनिग्रह की प्रशंसा की। यह सुन दवदन्ती ने मुंह मटका कर कहा कि वे वैसी ही होंगी। भला संसार में ऐसा कौन पुरुष है जिसे मैं वश न कर सकूं। देख मैं अभी अपना जाल बिछाती हूं और साधु सुदर्शन को फांस कर अपना दास बनाती हूं।

इतना कह कर उसने एक सुशील श्राविका का भेष धारण किया। उसकी कपट-चातुरी के कारण उसे देख कर यह कोई न कह सकता था कि यह एक प्रतिष्ठित घराने की शुद्ध श्राविका नहीं है। मायाविनी वेश्या श्राविका के रूप में धीरे २ इरिया (जीव-जन्तु को देख कर पैर रखती हुई) सहित साधु सुदर्शन के समीप आयी। हाथ जोड़, वन्दना कर कपट-जयणा * के साथ गुण गान के पश्चात् इस प्रकार बोली:—"भगवन्! मैं बड़ी देर से आप की भावना भा रही हूं। आपने दर्शन दे मुझे कृतार्थ किया, अब कृपया मेरे मन्दिर में पधार कर भिक्षा लीजिये और गृह को पवित्र कीजिये"। सरल हृदय साधु सुदर्शन उसके कपट को न जान सके और आहार-पानी लेने के निमित्त उसके भवन के भीतर चले गये।

नोटः—उघारे मुंह न बोलने को जयणा कहते हैं।



"भगवन्! मैं बड़ी देर से आपकी भावना भा रही हूँ। आपने दर्शन दे मुझे कृतार्थ किया, अब कृपया मेरे मन्दिर में पधार कर भिक्षा लीजिये और गृह को पवित्र कीजिये"। [पृष्ठ—११[illegible]]

वेश्या द्वारा उपसर्ग।

मुनि को घर में आये हुए देख कर उसके आनन्द का वारा-पार न रहा। वह प्रसन्न चित्त हो, प्रार्थना करने लगी कि "हे स्वामिनाथ! मैंने भोजन मंगाया है, आप शान्ति से बैठ कर, विश्राम के पश्चात्, आनन्द से भोजन कीजियेगा। थोड़ी ही देर में सुस्वाद, षटरस भोजन, नाना प्रकार के मेवा-मिष्टान्न और पकवान पूर्ण थाल साधु के सामने लाया गया। नवीन पदार्थों और नये ढङ्ग को देख कर साधु सहम गये कि यह तो श्राविका नहीं कोई कुपात्र स्त्री है और काग होकर हंस की चाल चलती है। यहाँ का रङ्ग-ढङ्ग देख साधु सुदर्शन पीछे पैर लौटे तो चारों ओर से किंवाड़ बन्द पाये। अतः बेचारे पुनः जाकर आंगन में खड़े हो गये। इतने में वेश्या सोलह शृङ्गार कर सामने आकर खड़ी हुई। उसकी कटि अत्यन्त क्षीण और सारे अव-यवों में चपला की सम्पूर्ण शक्ति विद्यमान थी। वह बड़े हाव-भाव के साथ बोली कि, "प्यारे मैंने तुम्हारे लिये श्राविका का रूप बनाया था, मैं देवदत्ती वेश्या हूं। आओ निस्सङ्कोच होकर मेरे साथ रमण कर अपने मनुष्य जन्म को सफल करो। संसार में आकर जिसने भोग-विलास का सुख नहीं भोगा, कठोर स्तन, मृदु स्वभाव और गौर वर्ण वाली स्त्री के अधरामृत का पान नहीं किया, उसका जीवन वृथा ही गया। देखो यह मनुष्य जन्म बार २ नहीं मिलता, अतः इसे घर २ भीख मांगने में न

गंवाओ। प्यारे! आप हमारे यहां रहो और आनन्द पूर्वक सब प्रकार के सुख भोगो— षट ऋतु के आनन्द का उपभोग करो। भला इस साधु भेष में क्या सुख है? न रुपया-पैसा पास रहता, न समय पर उत्तम भोजन मिलता। सवारी की बात तो दूर रही, पैर में जूता तक मयस्सर नहीं होता। भिक्षा के लिए प्रति दिन द्वार २ भटकना पड़ता है। तेल-उबटन तो क्या नहाने-धोने का भी ठिकाना नहीं और तिस पर भी सिर का लोच करना पड़ता है। शायद तुम समझते होगे कि इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से अगले जन्म में मुझे सुख मिलैगा, परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है। आगे जन्म की बात कौन देख आया है, जो कुछ है सब यहीं है। इस लिए जब तक जीते हो आनन्द के साथ मौज उड़ावो और चैन की वंशी बजावो, आगे की आगे देखी जायगी।

जो सारे आमोद-प्रमोद से हाथ धोकर चारित्र-श्रय के पीछे पड़ा है, भला उस पर इस निस्सार शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ सकता था। साधु सुदर्शन ने मन में सोचा कि:—"को नामा-मृतमास्वाद्य-विषमापातु मिच्छति" ऐसा कौन है, जो अमृत का आस्वादन करके फिर विष के पीने की इच्छा करता हो। अतः उन्होंने वेश्या की बात पर कुछ भी ध्यान न दिया।

वेश्या की दाल न गली।

निरीह तपस्वी से भी यथेच्छ मत्सर करने वाली वेश्या साधु सुदर्शन का चित्त चलाय मान न होते देख, हाथ पकड़,

बल पूर्वक पर्यङ्क पर खींच ले गयी। काम के मद से मदमाती गणिका पहले तो अपने दहिने कर पर कपोल रख, तिरछी दृष्टि करके कनखियों से देखने लगी, फिर कभी पाणि-पल्लव नचाती, कभी सीने पर हाथ रख सीत्कार करती और कभी आंखों का अर्द्धांश मीच स्खलित वचन बोलती थी। किन्तु आनन्द मय संयम के सरोवर में सराबोर होने वाले साधु सुदर्शन अपने गृहस्थ जीवन काल में ही (शील-व्रत के विश्वविद्यालय में परीक्षोत्तीर्ण होने के पूर्व ही) अध्ययन कर चुके थे कि:—

भ्रम के बश में फंसि कूकर ज्यों, रस के हित अस्थि चबावत है।
निज शोणित चाखत मोद भरो, पर नेकु विवेक न लावत है ॥
नर हू वनिता तन सेवन तें, तनिकौ न कभू सुख पावत है।
निज देह परिश्रम के मिसतें, सुख की सठ भावना भावत है ॥

अतएव इस विष्ठा-मूत्र और दुर्गन्ध की गुफा, धर्म-ध्यान में बाधा पहुंचानेवाली, लोगों की विडम्बना कर, नरक निगोद में ले जाने वाली कामिनी से सदैव सावधान रहना चाहिये। यह दुर्लभ मानव जन्म पाकर आनन्द मय मुक्ति के मार्ग का अवलम्बन करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। इत्यादि बातें सोच वे ध्यान मग्न हो पर्वत के समान निश्चल बने रहे। मोम का गोला आंच लगते ही गल जाता है; किन्तु माटी के गोले को जितना ही तपाया जाय उतना ही वह कड़ा और मजबूत होता जाता है। ठीक वही दशा साधु सुदर्शन की हुई, ज्यों २ उन्हें कष्ट मिलने लगे त्यों २

आठवाँ अध्याय

कर्म क्षय और केवलज्ञान।

भूतनी का कोप।

अभया रानी जो मरणान्त में व्यन्तरी (भूतनी) गति को प्राप्त हुई थी। उसने विचारा कि यह बड़ा ही उपयुक्त समय है, उस जन्म में न सही तो इसी जन्म में चल कर सुदर्शन को डिगाऊं और अपने वचन-मर्य्याद की रक्षा करूं। यह सोच राक्षसी एक रमणीय युवती का रूप धारण कर, साधु के समीप जाकर छेड़-छाड़ करने लगी। उसने कहा "हे साधु मुनिराज ! आपही के कारण मैं आत्मघात कर इस दशा को प्राप्त हुई हूं, तो भला अब तो एक बार गले से लग कर मेरे हृदय की [illegible] बुझाओ। देखो, कहा मानो और मेरी बात मान लो, नहीं

अब तुम्हारी खैर नहीं। वहां तो तुम्हारी रक्षा देवताओंने की थी, पर यहां तुम्हारा सहायक कोई नहीं है, हर प्रकार से तुम मेरे वश में हो" इतना कह कर वह राक्षसी साधु के शरीर से लिपट गयी और विविध भांति से उन्हें लक्ष्य-भ्रष्ट करने की चेष्टायें की, पर अचञ्चलचित्त साधु न डिगे तो न डिगे। भूतनी ने सीधी अङ्गुली घी न निकलते देख एक डाकिनी का विकराल रूप धारण किया और नाना प्रकार से साधु सुदर्शन को भयभीत करने लगी; किन्तु सोना धूल में भी चमकता है, वे हजार विपत्तियों के दांत दिखाने पर भी निश्चल ही बने रहे। फिर वह अत्यन्त क्रोधित हो, एक पक्षी का रूप धारण कर, पंख और चोंच में पानी ला ला कर उनके ऊपर छोड़ने लगी। उसने सभी प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा साधु सुदर्शन को पीड़ित किया, परन्तु "मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"। जितना ही वह भ्रष्ट करने की इच्छा से कष्ट पहुंचाती थी उतना ही अधिक वे धर्म-ध्यान में दृढ़ होते जाते थे। वे जानते थे कि विपत्ति की पराकाष्ठाही सुखोदय का पूर्व रूप है, अतः सुदर्शन मुनि ने भूतनी के उपसर्ग को भी उपकार ही माना और भव-भ्रान्ति को भस्म करने की इच्छा से समता भाव धारण कर उन्होंने अपने कर्मों का क्षय कर डाला।

देवता फिर आये।

साधु सुदर्शन पर विशेष कष्ट पड़ने के कारण देवताओं का



वह अत्यन्त क्रोधित हो, एक पक्षी का रूप धारण कर, पंख और चोंच में पानी ला ला कर उनके ऊपर छांड़ने लगी। [पृष्ठ—१६०]

अब तुम्हारी खैर नहीं। वहां तो तुम्हारी रक्षा देवताओंने की थी, पर यहां तुम्हारा सहायक कोई नहीं है, हर प्रकार से तुम मेरे वश में हो" इतना कह कर वह राक्षसी साधु के शरीर से लिपट गयी और विविध भांति से उन्हें लक्ष्य-भ्रष्ट करने की चेष्टायें की, पर अचञ्चलचित्त साधु न डिगे तो न डिगे। भूतनी ने सीधी अङ्गुली घी न निकलते देख एक डाकिनी का विकराल रूप धारण किया और नाना प्रकार से साधु सुदर्शन को भयभीत करने लगी; किन्तु सोना धूल में भी चमकता है, वे हजार विपत्तियों के दांत दिखाने पर भी निश्चल ही बने रहे। फिर वह अत्यन्त क्रोधित हो, एक पक्षी का रूप धारण कर, पंख और चोंच में पानी ला ला कर उनके ऊपर छांड़ने लगी। उसने सभी प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा साधु सुदर्शन को पीड़ित किया, परन्तु "मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"। जितना ही वह भ्रष्ट करने की इच्छा से कष्ट पहुंचाती थी उतना ही अधिक वे धर्म-ध्यान में दृढ़ होते जाते थे। वे जानते थे कि विपत्ति की पराकाष्ठाही सुखोदय का पूर्व रूप है, अतः सुदर्शन मुनि ने भूतनी के उपसर्ग को भी उपकार ही माना और भव-भ्रान्ति को भस्म करने की इच्छा से समता भाव धारण कर उन्होंने अपने कर्मों का क्षय कर डाला।

देवता फिर आये।

साधु सुदर्शन पर विशेष कष्ट पड़ने के कारण देवताओं का